Chapter-7

सप्तम् अध्याय

गोविन्द गिल्ला भाई का कवित्व

प्राक्कथन

गोविन्द गिल्ला भाई की कृतियाँ तथा कृतित्व के सामान्य परिचय के पश्चात्, सम्प्रति उनके कृतित्व के विभिन्न रूपों का विवेचनात्मक अध्ययन किया जा सकता है । पूर्व दो अध्यायों में गोविन्द गिल्ला भाई की कृतियाँ तथा कृतित्व का केवल विवरणात्मक अध्ययन ही किया गया है तथा कृति परिचय के आधार पर उनके कृतित्व के स्वरूप की व्याख्या तथा विकास का भी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। अत: अब उनके कृतित्व के मूल्यांकन के हेतु उसका विवेचनात्मक अध्ययन किया जा सकता है । पूर्व अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का कृतित्व अत्यन्त व्यापक तथा वैविध्यपूर्ण था, जिसकी सभी विधाओं का अध्ययन प्रस्तुत अध्याय की परिसीमा में संभव नहीं हो सकता । अत: प्रस्तुत अध्याय में गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व का अध्ययन किया जा रहा है ।

कवित्व शब्द अपने आप में सैद्धान्तिक वाद विवादों से सर्वथा मुक्त नहीं कहा जा सकता। तथापि, काव्य के अध्ययन के लिए समीक्षकों ने काव्य के विषय (कन्टेन्ट) तथा विन्यास (फार्म) के रूप में काव्य के दो पक्षों को सामान्यत: मान्य कर लिया है । वस्तुत: गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य के उक्त दोनों रूपों का विवेचनात्मक अध्ययन करके ही उनके कवित्व का समुचित मूल्यांकन किया जा सकता है । लेकिन प्रस्तुत अध्याय में गोविन्द गिल्ला भाई के समूचे काव्य का सर्वांगीण अध्ययन सम्भव न होने के कारण, विषय की दृष्टि से ही उनके काव्य का अध्ययन किया जा रहा है, जिसका

अध्ययन क्रम निम्नलिखित है :

१- कवित्व की सीमा और वर्गीकरण
२- काव्यादर्श
३- शृंगार काव्य : ऐतिहासिक भूमिका तथा गोविन्द गिल्ला भाई का शृंगार काव्य
४- नीति काव्य ,, ,, नीति ,,
५- भक्ति काव्य ,, ,, भक्ति ,,
६- उपसंहार

१। कवित्व की सीमा और वर्गीकरण

गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व के स्वरूप के विषय में विचार किया जा चुका है,[1] जिसके आधार पर उनके कवित्व की सीमाएं निर्धारित की जा सकती हैं। परन्तु उनके कवित्व की सीमा निर्धारित करने से पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कवित्व शब्द के विषय में भी संक्षिप्त रूप से विचार कर लिया जाय। क्योंकि कवित्व शब्द से कोई भी व्यक्ति अपनी कवि और काव्य विषयक धारणा के अनुसार कुछ भी अर्थ ले सकता है, तथा ये धारणाएं सैद्धान्तिक दृष्टि से विभिन्न व्यक्तियों की रुचि, मान्यता आदि के अनुसार विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। परन्तु वास्तविक एवं व्यावहारिक दृष्टि से हिन्दी के काव्य तथा कवि विषयक सामान्य धारणा के आधार पर कवित्व का एक सामान्य अर्थ स्वीकार किया जा सकता है। अर्थात् कवित्व शब्द से हमारा आशय हिन्दी में कवियों द्वारा रचित समूचे काव्य साहित्य के पर्याय भाव के अर्थ में स्वीकृत किया जा सकता है। हिन्दी के कवियों ने जिन विषयों तथा जिन विन्यासों में काव्य रचना की है, वे हिन्दी के कवित्व की सीमाएं मानी जा सकती हैं, तथा इन सीमाओं के संयोग को हिन्दी के कवित्व का स्वरूप माना जा सकता है। हिन्दी के कवि तथा उनकी काव्य कृतियां सामूहिक रूप से हिन्दी के कवित्व के निर्माण की इकाइयां मानी जा सकती हैं। आशय यह कि जिस प्रकार किसी कवि की समस्त कृतियों के विषय तथा विन्यास के आधार पर उसके कवित्व

१- देखिए अध्याय षष्टम्।

की परिकल्पना की जा सकती है उसी प्रकार किसी भाषा विशेष के कवित्व को समझा जा सकता है। हिन्दी के कवित्व की कुछ ऐसी विशेषताएं उसके इतिहास के अध्ययन से सामने आती हैं, जो सर्वकालिक कही जा सकती हैं, जैसे विषय की दृष्टि से आध्यात्मिक प्रेम तथा विन्यास की दृष्टि से गीत काव्य। हिन्दी काव्य के इतिहास को किन्हीं विशिष्ट कारणों से किन्हीं काल खंडों में बांटने के समान ही किसी विषय विशेष या विन्यास विशेष के आधार पर किन्हीं परम्पराओं में भी विभक्त किया जा सकता है। उदाहरणार्थ हिन्दी काव्य के आदि काल से आज तक के इतिहास को आध्यात्मिक तथा शुद्ध काव्य की दो स्वतंत्र, परन्तु लगभग समानान्तर परम्पराओं के रूप में विभक्त किया जा सकता है, जो हिन्दी के कवित्व की स्वरूप विधायक विशेषताएं या सीमाएं कही जायेंगी। आध्यात्मिक काव्य और शुद्ध काव्य, यद्यपि हिन्दी के कवित्व की सार्वकालिक विशेषताएं कही जा सकती हैं, परन्तु इनका प्राधान्य क्रमश: भक्ति काल तथा रीति काल में माना जा सकता है। हिन्दी के इतिहास के काल खंडों का नामकरण प्रवृत्ति प्राधान्य के अनुसार ही किया गया है।[१] परन्तु इसका आशय यह नहीं, कि भक्ति काल में केवल भक्ति काव्य और रीतिकाल में केवल रीति काव्य ही लिखा गया, अन्य प्रकार का काव्य नहीं। आदि काल जिस प्रकार अपभ्रंश काव्य की अनेकानेक विशेषताओं को पचा कर कुछ अपनी नवीन विशेषताओं के साथ निष्पन्न होता है उसी प्रकार भक्तिकाल में आदिकालीन राजाश्रित काव्य परम्परा अकबर तथा राजपूताने के राजाओं के दरबारों में जीवित मिलती है।[२] जैन कवियों की काव्य परम्परा विशेषकर पश्चिमी भारत में बहुत कुछ आदिकाल के समान ही १६ वीं शताब्दी तक मिलती है।[३] रीतिकाल में एक और भूषण, लाल, सूदन आदि कवियों में वीर काव्य परम्परा, तो दूसरी ओर जग जीवन, सुन्दर दास, दरिया, मलूट आदि में संत काव्य परम्परा तथा नूर मुहम्मद, ख्वाजा अहमद, आलम आदि में प्रेम मार्गी काव्य धारा प्राप्त होती है,[४] और नारायण स्वामी, नागरीदास,

---

१- तुलनीय है, बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १४।

२- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १४।

३- जैन साहित्य नो इतिहास - मोहनलाल दलीचंद देसाई, पृ० ६०३।

४- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १४, १५।

अलबेली अली, चाचा हित वृंदावनदास, भगवत रसिक आदि में कृष्ण भक्ति काव्य एवं बालकृष्ण, बालानन्द, मधुर प्रिय, विन्दुकाचार्य आदि में राम भक्ति काव्य की परंपराएं अक्षुण्ण मिलती हैं।[१] आशय यह कि यद्यपि रीतिकाल में जैन, संत, सूफी, राम भक्ति, कृष्ण भक्ति काव्य तथा वीर, नीति एवं शृंगार काव्य की स्वतंत्र धाराएं मिलती हैं, परन्तु इस काल में शृंगार अथवा रीतिकाव्य के गुण तथा मात्रा की दृष्टि से प्रधान होने के कारण इस काल को शृंगार अथवा रीतिकाल कहा जाता है।[२] परन्तु रीतिकाल के अंत के साथ साथ रीतिकाव्य का अंत नहीं माना जा सकता। आधुनिक काल में भी यह परम्परा जीवित मिलती है।[३] आशय यह कि हिन्दी के कवित्व की सीमा हिन्दी के इतिहास में प्राप्त उक्त विभिन्न काव्य धाराएं ही हैं, जो किसी काल खंड में प्रधान रूप से मिलती हैं।

उक्त दृष्टि से गोविन्द गिल्ला भाई की समस्त काव्य कृतियों पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रधानत: उनका कवित्व रीतिकालीन कवियों के समान शृंगार, नीति और भक्ति की सीमाओं में आबद्ध है। यश वर्णन नामक इनकी रचना वस्तुत: प्रशस्ति काव्य की श्रेणी में ही आती है, परन्तु अत्यन्त लघु तथा प्रारम्भिक रचना होने के कारण तथा बाद में किसी ऐसी रचना के न मिलने के कारण इसे उनके कवित्व की प्रमुख रेखा नहीं माना जा सकता। वैसे प्रशस्ति परकता रीतिकालीन कवियों के कवित्व की एक सामान्य विशेषता रही है, परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व की यह नगण्य विशेषता ही कही जा सकती।

इसलिए गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व की प्रमुख सीमाओं के रूप में भक्ति, नीति और शृंगार को स्वीकार किया जा सकता है। षट् ऋतु वर्णन तथा पावस पयोनिधि नामक इनकी ऐसी रचनाएं हैं, जिन्हें प्रकृति काव्य के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु उनमें प्रकृति चित्रण के उस रूप में न मिलने के कारण, जिस रूप में प्रकृति चित्रण, प्रकृति काव्यों में सामान्यत: माना जाता है, उन्हें प्रकृति

१- तुलनीय है : श्री हितहरिवंश गोस्वामी : सम्प्रदाय और साहित्य - ललिताचरण गोस्वामी, रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय - भगवत प्रसाद सिंह ।

२- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६६१ ।

३- वही, पृ० ६६६ ।

काव्य न मानकर, शृंगार काव्य के अंतर्गत ही स्वीकार किया जा सकता है । कवि ने इन रचनाओं में प्रकृति का चित्रण शृंगार के उद्दीपन के रूप में ही किया है । अत: गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व की सीमा भक्ति, नीति और शृंगार के रूप में मानी जा सकती है । जैसे रीतिकाल और भारतेन्दु काल के कुछ कवियों में, भक्ति, नीति और शृंगार काव्य क्रमश: उत्तम होने के कारण उत्तरोत्तर प्रकर्ष के सूचक हैं, उसी प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई में भक्ति, नीति तथा शृंगार क्रमश: प्रधान तथा उत्तम रूप में मिलते हैं । सारांश यह कि भक्ति, नीति और शृंगार गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व के आयाम-त्रय माने जाने जा सकते हैं, जिनसे बाहर उनका काव्य नहीं जाता । भारतेन्दु काल में यद्यपि उक्त विषयों के अतिरिक्त नवीन सम-सामयिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषयों पर भी कविता लिखी जाने लगी थी, परन्तु गोविन्द गिल्लाभाई का कवित्व परम्परा की शृंखलाओं से मुक्त नहीं हो पाया था । उनकी कविताओं में युग की प्रगतिशीलोन्मुखता नहीं मिलती। अत: उनके कवित्व की परम्परा सापेक्ष ही कहा जा सकता है, युग सापेक्ष नहीं । गोविन्द गिल्ला भाई की काव्य कृतियों के प्रधान विषयों के आधार पर उनके कवित्व को निम्नलिखित प्रकार बांटा जा सकता है :

१- प्रशस्ति काव्य
२- भक्ति काव्य
३- प्रकृति काव्य
४- नीति काव्य
५- शृंगार काव्य

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रकृति काव्य को शृंगार के अन्तर्गत स्वीकार किया जा सकता है, तथा प्रशस्ति काव्य को उनके कवित्व का प्रमुख वर्ग नहीं माना जा सकता । अत: उनके कवित्व को उक्त शेष तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है । आगे उनके कवित्व का अध्ययन भी इसी क्रम में किया जा सकता है ।

२। काव्यादर्श

गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व के अध्ययन से पूर्व उनके काव्यादर्श के विषय में विचार किया जा सकता है । गोविन्द गिल्ला भाई के कृतित्व का उक्त सीमांकन तथा वर्गीकिरण उनके कवित्व के यथार्थ का सूचक है, जबकि काव्य विषयक उनकी धारणाएं उनके कवित्व के उस आदर्श की ओर इंगित करती हैं, जिनकी प्राप्तिके प्रयास में उनके कवित्व को उक्त यथार्थ प्राप्त हुआ है । किसी कवि के कवित्व के यथार्थ तथा आदर्श की तुलना के आधार पर उस कवि के कवित्व की सामर्थ्य का अनुमान किया जा सकता है । अत: गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व के अध्ययन को प्रारम्भ करने के पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उनके काव्यादर्श के विषय में विचार कर लिया जाय ।

यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कवि किसी न किसी आदर्श को अपने सम्मुख रख कर ही काव्य रचना में प्रवृत्त हो । आशय यह कि यह अनिवार्य नहीं है कि प्रत्येक कवि किसी न किसी आदर्श के प्रति जागरूक रहे और तदनुसार ही काव्य रचना में प्रवृत्त हो । कोई कवि किसी प्रकार के आदर्शपरक पूर्वाग्रह से मुक्त रह कर भी काव्य रचना कर सकता है। परन्तु उसके काव्य में सहज ही कोई आदर्श मूर्त हो सकता है । वस्तुत: यहां इस प्रकार के किसी आदर्श से हमारा संबंध नहीं है । यहां आदर्श शब्द से तात्पर्य केवल कवि की उन काव्य विषयक धारणाओं से है जिन्हें वह अपने काव्य में मूर्त करना चाहता है । यह बात अलग है कि वह अपने प्रयास में सफल होता है या नहीं । कवि जिस अंश तक अपने आदर्श की प्राप्ति कर लेता है, उस अंश तक वह अपने आप को सफल मान सकता है, चाहे कोई समीक्षक उसकी इस मान्यता से सहमत हो या न हो । परन्तु कवि की दृष्टि से काव्योत्कर्ष उसके आदर्श की प्राप्ति में माना जा सकता है । अत: किसी कवि के काव्य के उत्कर्ष के विषय में विचार करने से पूर्व उसके काव्यादर्श के विषय में विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है ।

काव्यादर्श के विषय में संस्कृत के आचार्यों ने विस्तार से विचार किया है,[१] परन्तु आचार्यों अथवा समीक्षकों द्वारा स्थापित काव्य के मान सदैव कवियों द्वारा

१- हिन्दी कवियों का काव्यादर्श - सं० डा० प्रेमनारायण टंडन, पृ० १० आदि ।

मान्य नहीं होते । विभिन्न कवियों ने अपनी अपनी स्वतंत्र चेतना के अनुसार अपने काव्यादर्श के विषय में विभिन्न मत अभिव्यक्त किये हैं । विद्वानों ने हिन्दी के कवियों के काव्यादर्श के विषय में विचार किया है[१]। परन्तु यहां उनके विषय में विचार न कर गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यादर्श के विषय में ही विचार किया जाता है । गोविन्द गिल्ला भाई के विभिन्न ग्रंथों में काव्य विषय ऐसे अनेक विचार बिखरे हुए मिलते हैं, जो उनके काव्यादर्श विषयक उनके विचारों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से स्पष्ट करते हैं । रीति ग्रंथों की परम्परा के अनुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में इस विषय की सैद्धान्तिक चर्चा की है, जबकि अन्य ग्रंथों में इसकी चर्चा व्यावहारिक दृष्टि से की है । इसी के साथ इन्होंने अपने ग्रंथों के परिचय आदि के विषय में जो लिखा है उससे भी इनके काव्यादर्श के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यादर्श से संबंधित सामग्री निम्नलिखित तीन रूपों में प्राप्त होती है :

१- सैद्धान्तिक रूप में, मुख्यत: काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में ।
२- व्यावहारिक रूप में, मुख्यत: नीति काव्य ग्रंथों में ।
३- सामान्य उल्लेखों के रूप में गोविन्द ग्रंथमाला के उपोद्घात में ।

उक्त तीनों प्रकार की सामग्री का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि गोविन्द गिल्ला भाई सैद्धान्तिक रूप से रसवादी थे । कविता कामिनी के रूपक के माध्यम से कवि ने बताया है कि शब्द अर्थ कविता कामिनी की देह है, जिसमें शब्द देह का अग्र भाग तथा अर्थ पृष्ठ भाग है, जीव रस है, सुन्दरता व्यंजना, शोभा ध्वनि तथा शब्दालंकार वस्त्र और गुण, वृत्ति रीति, गुण, दोष दूषण तथा अर्थालंकार आभूषण हैं[२]। अन्यत्र भी रस को काव्य की आत्मा मानते हुए काव्य के अन्य सभी अंगों का समुचित महत्व प्रतिपादित किया गया है[३] तथा कविता को सरस, मोदक,

---

१- हिन्दी कवियों का काव्यादर्श - डा० प्रेमनारायण टंडन, पृ० १० आदि ।
२- अलंकार अंबुधि - ह०प्र०सं० १६५, पृ० ३ छं० १० ।
३- गोविन्द हजारा - ह०प्र०सं० २०३, पृ० ३ छं० १७ ।

रमणीय और पिंगल मतानुसारी लोकोत्तर रचना कहा है।[1] गोविन्द गिल्ला भाई ने कविता को चतुर्वर्गों तथा कीर्ति, अर्थ और विनोद की साधिका माना है।[2] संस्कृत के आचार्यों की परिपाटी के अनुसार उन्होंने लोक और शास्त्र में निपुणता, काव्य शिक्षा, और अभ्यास के साथ साथ प्रतिभा को काव्य कारण के रूप में स्वीकार किया है।[3] उत्तम, मध्यम तथा अधम काव्यों की चर्चा करते हुए कवि ने ध्वनि काव्य को उत्तम, गुणीभूत व्यंग्य काव्य को मध्यम तथा चित्र काव्य को अधम बताया है।[4] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई की काव्य विषयक धारणा संस्कृत के आचार्यों की तद्विषयक धारणाओं के समान ही है, जिन पर आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ का विशेष प्रभाव माना जा सकता है। गोविन्द गिल्ला भाई ने इनकी रचनाओं के कुछ अंशों का गुजराती अनुवाद भी किया था,[5] अतः यह प्रभाव स्वाभाविक ही था।

आशय यह कि सैद्धान्तिक रूप से गोविन्द गिल्ला भाई रसवादी ध्वनिवादी आचार्यों के अधिक निकट हैं, जैसा कि पूर्वोक्त उनके काव्य विषयक विचारों से स्पष्ट होता है। परन्तु इसे उनके काव्यादर्श का शास्त्रीय या सैद्धान्तिक पक्ष ही कहा जा सकता है, व्यवहार में उनका काव्यादर्श इससे भिन्न ही रहता है। आशय यह कि सैद्धान्तिक रूप से उन्हें काव्य का उक्त रूप ही स्वीकार्य था, परन्तु इस प्रकार के काव्य को उन्होंने अपने काव्य के आदर्श के रूप में स्वीकृत नहीं किया था, जो इनके काव्य विषयक शेष उल्लेखों तथा काव्य रचना के स्वरूप से सिद्ध हो जाता है।

गोविन्द गिल्ला भाई के अनुसार साहित्य तथा काव्य शब्द एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं, उन्होंने लिखा है कि :

साहित्य है सब वस्तु के आलम मांहि अपार[6]

१- गोविन्द हजारा - ह०प्र०सं० २०३, पृ० ३ छं० १२।

२- अलंकार अंबुधि - ह०प्र०सं० १९५, पृ०२, छं० ६।

३- वही, पृ० २, छं० ८।

४- वक्रोक्ति विनोद- ह० प्र०सं० १५८, पृ० ३ से ७।

५- स्मरण पोथी, पृ० ३२।

६- साहित्य चिन्तामणि ह०प्र०सं० २०७, पृ०२१, छं० ६२।

इतना ही नहीं, साहित्य शब्द की व्याप्ति को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए अन्यत्र लिखा है कि

साहित्य तें काव्य कविं करत सुभग सदा,
साहित्य तें शूर लडी विजय कों पात हैं ।
साहित्य तें चित्रकार चित्र रमनीक रचे,
साहित्य तें गाइ शुभ गायक रिभात हैं ।
साहित्य तें शिल्पकार आपके अनेक काम,
रचि कें लला म भये विश्व में विख्यात हैं ।
गोविंद कहत लखौ जाको जैसो काम ताको,
तैसो ही साहित्य शुभ विश्व में विभात हैं ।[१]

आशय यह कि विविध प्रकार के कार्मों के लिए लिखा गया साहित्य ही गोविन्द गिल्ला भाई की दृष्टि में साहित्य है । यहां इसका अर्थ संस्कृत के शास्त्रीय साहित्य से भी नहीं लिया जा सकता । क्योंकि उन्होंने अन्यत्र लिखा है कि

विवहारिक सब विषय जे बात बात में आंय ।
प्रसंग पडे प्रगटत सदा साहित्य सोई कहाय ।।[२]

अर्थात् व्यावहारिक ज्ञान के लिए आवश्यक नीति विवेक विनय आदि से सम्बन्धित साहित्य ही गोविन्द गिल्ला भाई के लिए साहित्य है । सामान्यत: मान्य काव्य और शास्त्र से भिन्न, साहित्य विषयक यह धारणा संस्कृत के नीति शास्त्र और नीति काव्य या सुभाषित साहित्य से बहुत कुछ मिलती जुलती है ।[३]

गोविन्द गिल्ला भाई की रुचि सुभाषित साहित्य में प्रारम्भ से ही थी,[४] और उन्होंने एक स्थान पर तो उसे काव्य से भी अधिक मधुर कहा है :

१- साहित्य चिंतामणि, पृ० २० छं० ६२ ।
२- वही, पृ० २१ छं० ६३ ।
३- तुलनीय है वही, पृ० २०, २१, छं० ८६, ६४ ।
४- ,, गोविन्द ग्रंथमाला उपोद्घात, पृ० २० ।

बानिन मैं सरवोत्तम शोहत मिष्ट महाब्रज बानि कहावे ।
तामैं महा मधुरी कविता सब के मन मैं बहु मोद उपावे ।
ताहि मैं मिष्ट तिया अधरामृत लोकन मैं रमनीय लखावे ।
गोविन्द वाहितैं मिष्ट मनोहर एक सुभाषित चारु सुहावे ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई काव्य और शास्त्र से भिन्न साहित्य की एक स्वतंत्र कोटि मानते हैं जो एक ओर नीति शास्त्र और काव्य के समान है तथा दूसरी ओर संस्कृत के सुभाषित साहित्य से मिलती जुलती है । इस प्रकार के साहित्य के प्रति उनकी रुझान प्रारम्भिक अवस्था से ही थी, साथ ही उसे वे काव्य से भी अधिक मधुर मानते थे, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि उनका काव्यादर्श संस्कृत के सुभाषितकार कवियों के बहुत कुछ समान था ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने कवि में जिन योग्यताओं की आवश्यकता मानी है उन्हें देखते हुए यही लगता है कि वे कवि में प्रतिभा की अपेक्षा शास्त्र ज्ञान को अधिक आवश्यक मानते थे । उन्होंने लिखा है कि

व्याकरन इतिहास पिंगल पुरान पुनि,
न्याय नाममाला और संगीत सुहात है ।
हाव भाव भेद भूरि नायक औ नायका के
वृत्ति के विभेद और अर्थ उपजात है ।
दूषण भूषण और नेक नव रस रीति,
व्यंग्य ध्वनि लक्षनादि विमल विभात है ।
गोविंद कहत ऐसे भेद कों अनंत तऊ
कविता करन योग्य कवि सो कहात है ।[2]

इतना ही नहीं, वरन् अन्यत्र भी उन्होंने कविता करने के लिए निघंटु आदि शास्त्रों का परिज्ञान भी आवश्यक बताया है,[3] तथा कहा है कि इन शास्त्रों के ज्ञान

१- विवेक विलास ह०प्र०सं० १७०, पृ० ३८, छं० ७२ ।

२- वही, पृ० ३६, छं० ५० ।

३- वही, पृ० ३६ छं० ५३ ।

के अभाव में कविता करने वाला कवि पंडितों की सभा में उपहास का पात्र सिद्ध होता है।[१] कवि के लिए आवश्यक उक्त योग्यताओं के वर्णन में प्रतिभा या तदर्थवाची किसी शब्द का एकांत अभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिससे अनुमान कियाजा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई की दृष्टि में प्रतिभा का वह महत्व नहीं है जो निपुणता तथा अभ्यास का है।[२] आशय यह कि संस्कृत के सुभाषितकारों के 'विद्वत्कवय' ही गोविन्द गिल्ला भाई के आदर्श कवि थे। संस्कृत की निम्नलिखित आर्या उनके आदर्श कवि का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत करती है :

विद्वत्कवय: कवय: केवल कवयस्तु केवलं कपय:
कुलजाया सा जाया केवल जाया तु केवलं माया

गोविन्द गिल्ला भाई जैसे विद्वत्कवि से सार्थ, सालंकार और सरस कविता की अपेक्षा की जा सकती है।[३]

जिस प्रकार गोविन्द गिल्ला भाई की उक्त कवि विषयक विचारधारा के आधार पर उनके अनुसार आदर्श कवि विद्वत्कवि सिद्ध होता है उसी प्रकार उनके कविता विषयक विवरणों के आधार पर शास्त्र-सम्मत कविता उनके अनुसार आदर्श कविता सिद्ध होती है। गोविन्द गिल्लाभाई के अनुसार सुकवि का काव्य, जो कुलीन कामिनी से समान बड़े पुण्यों से प्राप्त होता है, अनेक गुणों से मंडित होता है, उसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है :

निखिल निकाई भारो सुन्दर सुवर्ण बारो,
राजत रसाल महा विवुध विरामिनी।
सरस सुखद सदा दूषण रहित पुनि,
भूषण भरित लसै दिन और जामिनी।

१- विवेक विलास ह०प्र०सं० १७०, पृ० ३७ छं० ५८।

२- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, उपोद्घात, पृ० ६।

३- विवेक विलास, पृ० ३६, छं० ५४।

विमल विशाल हाव भाव की भरित पुनि,
श्लेष तें सदाय लौं चित्त में सुहामिनी ।
गोविंद कहत ऐसी पाइये सुपुन्यन तें,
सुकवि की काव्य और कुलवान कामिनी[1] ।

स्पष्ट है कि इस छंद की रचना करते समय कवि की दृष्टि संस्कृत के निम्नलिखित सुभाषित श्लोक पर रही होगी :

सरसा सालंकारा सुपदन्यासा सुवर्णमय मूर्ति ।
आर्या तथैव भार्या न लभ्यते पुण्यहीनेन ।।

गोविन्द गिल्ला भाई के उक्त छंद का आधार जो भी हो, परन्तु इतना निश्चित है कि उनकी दृष्टि में वही कविता उत्तम है, जो सरस होने के साथ साथ सालंकृत भी हो[2] ।

आशय यह कि आचार्य केशवदास आदि चमत्कार-प्रिय हिन्दी कवियों के समान ही गोविन्द गिल्ला भाई सुन्दर और सरस काव्य में भी अलंकार की अनिवार्य आवश्यकता मानते थे । उन्होंने एक स्थान पर इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है कि :

सुन्दर शुद्ध शरीर सुहावत,
चारु सुवर्ण मई सुखकारी ।
भाव भरी रस रीति भरी पुनि,
धारित सर्व सगून अपारी ।
ऐसि अनूप सुवृत्त मई महा,
दूषण बीन विराजत भारी ।
गोविंद तोहू न भूषण के बिन,
भाय भली कविता वनिता री[3] ।

१- विवेक विलास ह०प्र०सं० १७०, पृ० ३३, छं० ३७ ।

२- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, उपोद्घात, पृ० ६ ।

३- शब्द विभूषण ह०प्र०सं० १७३, पृ० १, छं० ५ ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धान्त रूप में यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई ने रस को ही काव्य की आत्मा माना है तथा ध्वनि-काव्य को ही उत्तम काव्य कहा है, परन्तु उनकी यह मान्यता केवल सिद्धान्त विवेचन तक ही सीमित है, व्यवहार में वे अलंकार बिना, "भाव भरी रस रीति भरी" कविता को भी, भली नहीं मानते ।

अपने विभिन्न ग्रंथों का परिचय देते समय कवि ने उनकी अलंकारमयता तथा चमत्कारिकता का सदैव विशेष रूप से उल्लेख किया है,[१] जिससे इनकी अलंकार प्रियता ही सिद्ध होती है । वैसे गोविन्द गिल्ला भाई ने शृंगार तथा नीति विषयक कविता ही प्रधान रूप से लिखी है। भक्ति विषयक रचना प्रधानत: मंगलाचरणार्थ ही है,[२] परन्तु उनमें भी कवि का ध्यान भक्ति भाव पर अधिक न होकर, अलंकार प्रयोग पर ही अधिक है और इस बात का कवि ने विशेष रूप से उल्लेख भी किया है । उदाहरणार्थ विष्णु विनय पच्चीसी के प्रयोजन को बताने के साथ साथ उसकी अनुप्रासमयता का उल्लेख अवश्य कर दिया है[३]। इसी प्रकार राधा मुख षोडशी में उपमादि अन्य अलंकारों, पयोधर पच्चीसी में उपमा श्लेषादि अलंकारों तथा नैन मंजरी में उपमा रूपक संदेह श्लेष उत्प्रेक्षादि अलंकारों का कवि ने विशेष रूप से उल्लेख किया है[४]। इन उल्लेखों के आधार पर यही कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई की अलंकृत-काव्य ही प्रिय था और उसे वे अपना काव्यादर्श मानते थे ।

संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों द्वारा मान्य काव्य प्रयोजन, गोविन्द गिल्ला भाई को भी, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सिद्धान्त रूप से स्वीकृत थे, परन्तु व्यवहार में उन्हें किसी प्रकार का आध्यात्मिक प्रयोजन स्वीकार्य प्रतीत नहीं होता । उन्होंने एक स्थान पर लिखा है कि :

कविता और हि कामिनी मनरंजन के ठौर ।
पै मनमोदक विबुध सो कविता वनिता और ।[५]

१- देखिए : गोविन्द ग्रंथमाला , उपोद्घात, पृ० १३ से १५ ।

२- वही, पृ० १२ , १३ ।

३- वही, पृ० १३ ।

४- वही, पृ० १५ ।

५- विवेक विलास ह०प्र०सं० १०७, पृ० ३४, छं० ४४ ।

अर्थात् सामान्य कविता मात्र मनरंजन ही करती है जबकि और श्रेष्ठ कविता विवुध जनों को मोद प्रदान करती है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के अनुसार काव्य से किसी ब्रह्मानन्द सहोदर रस या किसी प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति की प्राप्ति नहीं होती, वरन् मनोरंजन ही उससे होता है तथा जिस कविता से विवुध या विद्वानों को मोद प्राप्त होता है वह श्रेष्ठ कविता है । अन्यत्र भी कवि ने इस प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं।[१] इस प्रकार कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई काव्य के प्रयोजन में किसी प्रकार की आध्यात्मिकता नहीं मानते । उसका प्रभाव मनुष्य केहृदय पर अवश्य होता है, परन्तु वह प्रभाव उसी प्रकार का होता है जिस प्रकार का प्रभाव मनुष्य के हृदय पर किसी बाण के लग जाने पर होता है[२]। यद्यपि कविता करने की क्षमता किसी कवि में पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण ही गोविन्द गिल्ला भाई ने मानी है,[३] परंतु कविता करने योग्य होने के लिये वे कवि में शास्त्र ज्ञान को अनिवार्य मानते हैं[४]।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यादर्श से संबंधित उक्त तीन प्रकार की सामग्री में से प्रथम प्रकार की सामग्री उनके काव्यादर्श के विषय में विशेष रूप से प्रकाश नहीं डालती । वह उनकी काव्य विषयक सैद्धान्तिक धारणाओं को ही स्पष्ट करती है । व्यवहार में उनका काव्यादर्श उनकी उक्त सैद्धान्तिक धारणाओं से भिन्न रहा है । जिसका कारण कदाचित् उनकी रुचि तथा अलंकृत-काव्य-प्रियता हो सकता है । आशय यह कि काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में उन्होंने जो अपने विचार व्यक्त किये हैं, उन्हें वे व्यवहार में स्वीकृत नहीं कर सके । परंपरानुसार उन्होंने काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों का विवेचन अवश्य किया है, परंतु व्यवहार में सुभाषितकार, सूक्तिकार, चमत्कारवादी, रीति सम्मत, पांडित्य पूर्ण आस्तिक कवि का काव्यादर्श ही उन्हें स्वीकृत रहा है ।

१- विवेक विलास ह०प्र०सं० १०७, पृ० ३४, छं० ३६ ।

२- वही ।

३- तुलनीय है : विवेक विलास ह०प्र०सं० १७०, पृ० ३३, छं० ३७ ।

४- वही, पृ० ३६, छं० ५०, ५३ ।

इस प्रसंग में यह भी ज्ञातव्य है कि गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यादर्श की उक्त सभी विशेषताएं उनकी समस्त काव्य कृतियों में सामान्य रूप से मिल जाती हैं। विशिष्ट रचनाओं में कुछ और भी विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं, जिनका अध्ययन आगे किया जायेगा। परन्तु इससे यह सिद्ध हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का काव्यादर्श वही है, जो उनकी काव्य कृतियों में कवि, काव्य, कृति, प्रयोजन आदि विषयक धारणाओं के रूप में व्यक्त हुआ है, न कि वह जो उनके काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में काव्यादि विषयक धारणाओं के रूप में व्यक्त हुआ है। काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में उन्होंने काव्य शास्त्रीय विषयों के सिद्धान्तों की परंपरा के अनुसार स्वीकृत कर उनकी व्याख्या करने की कोशिश की है, वे उनके सिद्धान्त नहीं कहे जा सकते, जबकि काव्य कृतियों में अपनी रुचि के अनुसार, जैसे उन्होंने काव्य रचना की है, उसी प्रकार उन कृतियों में उन्होंने काव्य, कवि तथा काव्य प्रयोजन के विषय में अपनी मान्यता के अनुसार ही लिखा है। अत: उसी के आधार पर उनके काव्यादर्श का जो स्वरूप ऊपर स्पष्ट किया गया है, वही उनका वास्तविक काव्यादर्श है, जिसे उन्होंने व्यावहारिक रूप में स्वीकृत किया था। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई का काव्यादर्श रस या ध्वनि को आदर्श रूप में ग्रहण नहीं करता। वरन् शास्त्र सम्मत अलंकृत काव्य को ही अपने आदर्श के रूप में स्वीकार करता है।

गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व का सीमांकन तथा वर्गीकरण और काव्यादर्श के विषय में विचार करने के पश्चात् अब उनके कवित्व के विभिन्न वर्गों का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जा सकता है। प्राधान्य क्रम के अनुसार उनके काव्य वर्गों का अध्ययन निम्नलिखित क्रम में किया जा सकता : शृंगार काव्य, नीति काव्य, भक्ति काव्य।

३। शृंगार काव्य

३।१ ऐतिहासिक भूमिका

शास्त्रीय दृष्टि से ही नहीं, वरन् अन्य दृष्टियों से भी शृंगार का साहित्य में बड़ा महत्व है[१]। संसार के साहित्य में शृंगार काव्य धारा किसी न किसी रूप में मिल

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७७१, ७७२।

अवश्य जाती है[१]। क्योंकि प्रेम का मानसिक एवं शारीरिक रूप सर्वत्र समान रहता है, यद्यपि प्रत्येक देश और काल अपनी रीति से उसको समझता है[२]। भारतीय साहित्य में शृंगार का प्रवेश कुछ विद्वानों ने भक्ति के माध्यम से माना है[३], परन्तु यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है कि वैदिक काल से भारतीय साहित्य में शृंगार की अक्षुण्ण परंपरा मिलती है, जिसे विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से बांटा है[४], परन्तु वैदिक कालीन शृंगार काव्य तथा परवर्ती शृंगार काव्यों अनेक प्रकार की असमानताएं दृष्टिगोचर होती हैं। शिष्ट संस्कृत साहित्य में जो मर्यादित शृंगार का स्वरूप देखने को मिलता है, उसके कारण कुछ विद्वानों ने परवर्ती भारतीय साहित्य में ही शृंगार के स्वच्छंद स्वरूप का अभाव मान लिया है[५]। ठीक इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने प्राकृत में हाल की गाथा सप्तशती के स्वच्छंद शृंगार का संबंध प्राचीन भारतीय साहित्य से न मान कर भारत में नवागत अहीर या आभीर नामक जाति के साथ जोड़ने का प्रयास किया है तथा उसे बिलकुल नवीन शृंगार काव्यधारा के रूप में स्वीकृत किया है[६]। आशय यह कि वैदिक तथा शिष्ट संस्कृत साहित्य को ही भारतीय साहित्य का एक मात्र पर्याय मान लेने तथा उनके बीच की शृंखलाओं को समुचित रूप से न समझने के कारण, विद्वानों में इस प्रकार की भ्रांत विचारधाराएं कभी कभी मिल जाती हैं।

वास्तव में प्राकृत साहित्य की स्वच्छंद शृंगार काव्य धारा वैदिक साहित्य की शृंगार काव्य धारा के अधिक निकट है[७]। साथ ही ईसवी सन् के पूर्व लिखे गये दक्षिण भारत के [illegible] तामिल साहित्य में, जो संघम् साहित्य के नाम से प्रसिद्ध है, शृंगार

१- तुलनीय है : देव और उनकी कविता : डा० नगेन्द्र, पृ०८६।

२- Fashion in Love : Aldues Huxley, p.132.

३- दरबारी संस्कृति और हिन्दी मुक्तक : डा०त्रिभुवन सिंह, पृ०६०।

४- हिन्दी काव्य में शृंगार परंपरा और महाकवि बिहारी : डा०गणपति चन्द्र गुप्त, पृ०६१।

५- वही, पृ०७६।

६- संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ०३४६।

७- A History of Sanskrit Literature : Dr. A.B.Keith,p.39.

काव्य मिलता है, वह भी प्राकृत के स्वच्छंद शृंगार काव्य के अधिक समान है।[१] संभवत: हाल की गाथा सप्तशती की मूल प्रेरणा दाक्षिणात्य ही रही हो। वैसे भी इतना निश्चित है कि गाथा सप्तशती किसी भी प्रकार विदेशी नहीं लगती। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में भी "इसकी स्पिरिट नयी है, परन्तु भाषागत और भावगत वह सतर्कता इसमें भी है जो संस्कृत कविता की जान है"।[२] परन्तु इतना अवश्य माना जा सकता है कि गाथा सप्तशती से पूर्व शिष्ट संस्कृत में शृंगार का वह रूप नहीं मिलता, जो उसके पश्चात् परवर्ती काल में गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती आदि रचनाओं में प्राप्त होता है।

आशय यह कि प्राचीन भारतीय साहित्य में एक और स्वच्छंद शृंगार काव्य धारा मिलती है, जो वैदिक साहित्य के साथ, प्राचीन तामिल तथा प्राकृत साहित्य में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। स्वच्छंद शृंगार की यह प्राकृत-परम्परा ने जो शास्त्र शासित न हो कर लोकोन्मुखी थी, संस्कृत के परवर्ती साहित्य को भी प्रभावित किया है। तथा अमरुक और गोवर्धनाचार्य आदि कुछ कवियों की मूल प्रेरणा ही यह काव्यधारा रही है।[३] संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री दास गुप्त तथा डे ने एक स्थान पर लिखा है कि प्राकृत काव्य की रूढ़ियां परवर्ती संस्कृत काव्य में अबाध रूप से स्वीकृत हुई हैं।[४] परन्तु इस धारा से भिन्न शिष्ट संस्कृत में कालिदास आदि कवियों के प्रबंध काव्यों में जो शृंगार काव्य मिलता है उसे आभिजात्य शृंगार काव्य ही कहा जा सकता है, क्योंकि वह शिष्ट समाज तथा शास्त्र द्वारा अनुमोदित था। उसमें प्राकृत शृंगार काव्य के समान न ऐहिकता है, न लोकोन्मुखता। संस्कृत का परवर्ती शृंगार काव्य विशेषकर प्रबन्ध काव्यों में शास्त्र सम्मत न रह कर शनैः शनैः शास्त्र शासित होता जाता है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के हिन्दी शृंगार काव्य के वर्गीकरण को यदि संस्कृत के शृंगार काव्य के वर्गीकरण के लिये स्वीकृत कर लिया जाय, तो कालिदास को

१- Indian Literature - Ed. Dr. Nagendra, pp. 17-19.

२- हिन्दी साहित्य की भूमिका - आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ११३।

३- हिन्दी मुक्तक का विकास - जितेन्द्र नाथ पाठक, पृ० ७१।

४- History of Sanskrit Literature - Das Gupta & De, Vol. I.

रीति सिद्ध तथा श्रीहर्ष को रीतिबद्ध शृंगार काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है। संस्कृत के इन कवियों की परंपरा में जो मुक्तक काव्य मिलते हैं, वे भी प्राकृत कवि हाल तथा संस्कृत कवि अमरुक आदि के समान ऐहिकता परक तथा लोकोन्मुख नहीं हैं। कालिदास के नाम से प्रचलित शृंगार तिलक, घटकर्पूर, भर्तृहरि रचित शृंगार शतक विल्हण कृत चौर पंचाशिका आदि रचनाओं की भाव भूमिका के निर्माण में आभिजात्य का योग है। यह आभिजात्य गाथा सप्तशती, अमरु शतक, आर्या सप्तशती के ऐहिक धरातल से थोड़ा भिन्न है।[१]

विद्वानों की मान्यता है कि समाज में निम्न वर्ग व अभिजात वर्ग की प्रेम भावना का प्रतिनिधित्व करने वाली शृंगार रस की मुक्तकों की प्राचीन धारा प्राकृत कवि हाल या सातवाहन की गाथा सप्तशती, संस्कृत के अमरुक के अमरु शतक, गोवर्धनाचार्य की आर्या सप्तशती व अपभ्रंश के मुंज रचित काव्यों से हो कर दीर्घ काल से प्रवाहित होती चली आ रही थी। इस धारा के साथ भक्ति स्तोत्रों की एक दूसरी धारा भी बहती चली आ रही थी जो अपने वाह्य रूप भक्ति निष्ट होते हुए भी शृंगारिक ही थी।[२]

आशय यह कि प्राचीन भारतीय साहित्य में उक्त दो प्रकार के शृंगार काव्यों की परम्परा के साथ साथ स्तोत्र साहित्य में भी शृंगार काव्य की शास्त्रीय परंपरा मिलती है।[३] स्तोत्र साहित्य की परंपरा भारत में बहुत प्राचीन काल से मिलती है। परन्तु मध्यकाल में, विशेष रूप से भक्ति के विकास के साथ साथ, अपने आराध्य देव के रूप या नख शिख वर्णन की शृंगारपरक परंपरा विकसित हुई।[४] शंकराचार्य के नाम से प्रसिद्ध स्तोत्र शृंगार काव्य के सुन्दर उदाहरण माने जा सकते हैं। नवीं शताब्दी तक तो शैव, बौद्ध, वैष्णव आदि सभी धार्मिक सम्प्रदायों में शृंगारिकता का प्रवेश हो गया था।[५]

१- ~~आधुनिक~~ हिंदी मुक्तक काव्य का विकास - जितेन्द्र नाथ पाठक, पृ० ७१, ७२।
२- आधुनिक हिन्दी में प्रेम और सौन्दर्य - रामेश्वर लाल खंडेलवाल, पृ० ६६।
३- Classical Sanskrit Literature - M.Krishnamachariar, pp. 311-312.
४- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास - जितेन्द्र नाथ पाठक, पृ० ७२।
५- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपतिचंद्र गुप्त, पृ० ११२।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के आदि काल से पूर्व भारतीय साहित्य में शृंगार काव्य की प्रधानत: निम्नलिखित तीन परम्पराएं प्राप्त होती हैं :

(१) अभिजात शृंगार काव्य : १- शास्त्र संमत, २- शास्त्र शासित ।

(२) लोकोन्मुख ऐहिकतापरक शृंगार काव्य , शास्त्र निरपेक्ष ।

(३) धार्मिक शृंगार काव्य , शास्त्र सम्मत ।

यहां यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्राकृत तथा अपभ्रंश में उक्त तीनों प्रकार का शृंगार काव्य नहीं मिलता । उनमें ऐहिकतापरक लोकोन्मुख शृंगार काव्य तथा थोड़ा बहुत धार्मिक शृंगार काव्य ही विशेष रूप से मिलते हैं, जबकि संस्कृत में उक्त तीनों प्रकार के शृंगार काव्य मिलते अवश्य हैं, परन्तु उसमें ऐहिकतापरक लोकोन्मुख शृंगार काव्य प्रधान रूप से नहीं मिलता । प्राचीन भारत की एक मात्र राष्ट्रभाषा होने के कारण उसमें सभी प्रकार का साहित्य मिलना स्वाभाविक है, परन्तु संस्कृत की संस्कारवादिता, नागरिक जीवन दृष्टि, आभिजात्य एवं शास्त्रीयता आदि कुछ ऐसी विशेषताएं हैं, जो उसी में प्राप्त होती हैं, तत्कालीन किसी अन्य भारतीय भाषा के साहित्य में नहीं । उक्त विशेषताएं ही हैं जो संस्कृत साहित्य को उसका विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती हैं तथा उसकी सभी काव्य धाराओं में सामान्य रूप से मिलती हैं । संस्कृत का शृंगार काव्य इसका अपवाद नहीं है । हिन्दी साहित्य के आदि काल से ही उसमें शृंगार काव्य की अविरल परम्परा प्राप्त होती है।[१] परन्तु हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों में शृंगार काव्य का स्वरूप एकसा नहीं मिलता । आदिकाल के जैन चरित काव्यों तथा रासो ग्रंथों में यत्र तत्र शृंगार का चित्रण उपलब्ध होता है, परन्तु वह प्रधानत: अपभ्रंश के लोकोन्मुख ऐहिकता परक शृंगार से क्रमश: विशेष रूप से प्रभावित है । क्योंकि उस समय तक हिन्दी साहित्य अपनी प्राकृत परम्परा से अपने आपको पूर्णत: मुक्त नहीं कर पाया था[२] ।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७७२ ।

२- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १५ ।

विद्यापति के शृंगार काव्यों में संस्कृत काव्यशास्त्र तथा कामशास्त्र के साथ साथ गीत गोविन्द का प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है,[1] परन्तु उनकी भाषा शैली अपने युग के सामान्य प्रभाव से मुक्त नहीं कही जा सकती । इस युग के सिद्ध कवियों की रचनाओं में भी शृंगारिक भावना प्रतीकात्मक रूप में प्राप्त होती है, जिसका विकसित रूप सूफी और संत साहित्य में दृष्टिगोचर होता है । सूफी तथा संत कवियों में शृंगार पार्थिवता से रहित तथा अधिक आध्यात्मिक है । परन्तु वह लौकिक शृंगार की सभी सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर सका है[2] । वस्तुत: इन कवियों का शृंगार काव्य संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश से अधिक प्रभावित है ।

सगुणोपासक भक्त कवियों में प्रथम बार शृंगार का संस्कृत साहित्य के समान शास्त्रीय रूप प्राप्त होता है । रामानुजाचार्य के समय से ही भक्ति केवल अनुभूति का विषय न रह कर, शास्त्र का विषय भी बनने लगी थी । आचार्यों ने तर्क के आधार पर भक्ति के स्वरूप का प्रतिपादन किया तथा यह सब कुछ संस्कृत भाषा में उसी के शास्त्रों के आधार पर हुआ था । परिणाम स्वरूप भक्ति काव्य पर भी संस्कृत के काव्य शास्त्र का प्रभाव पड़े बिना न रहा । इन्हीं सब कारणों से भक्ति काल में प्रथम बार हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य की ओर उन्मुख होता प्रतीत होता है[3] । जयदेव जैसे कवियों में 'हरि-लीला-स्मरण' और 'काम-कला-सुकुतूहल'[5] साथ साथ मिलने लगते हैं, परन्तु परवर्ती हिन्दी के सगुणोपासक भक्त कवियों ने काम कला आदि सबको भक्ति में अंतर्भुक्त कर दिया । भक्ति भाव इन कवियों में सर्वोपरि था, जिसके अनुशासन में सर्व शास्त्र तथा उनकी शास्त्रीयता आबद्ध थी[4] । तुलसी आदि सगुणोपासक भक्त कवियों की रचनाओं के अध्ययन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये भक्त कवि संस्कृत के महान् विद्वान् थे तथा उन्हें अनेक शास्त्रों का पूर्ण ज्ञान था । तुलसी के ग्रंथों में विद्वानों ने बाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, हनुमन्नाटक आदि अनेक संस्कृत ग्रंथों का प्रभाव सिद्ध किया है । कुछ विद्वानों

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७७२ ।

२- वही, पृ० ७७२ ।

३- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १५ ।

४- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १०६ ।

५- महाकवि मतिराम - डा० त्रिभुवन सिंह, पृ० ५१ ।

की मान्यता है कि हिन्दी पर पहले संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हुआ, तत्पश्चात् अन्य शास्त्रीय ग्रंथों का।[१] वस्तु स्थिति जो भी हो, परन्तु इतना निश्चित है कि भक्ति काल में हिन्दी साहित्य संस्कृत साहित्य के अधिक निकट आया और यह नैकट्य रीतिकाल में और भी अधिक बढ़ा। परन्तु इसका यह आशय नहीं कि इस समय से हिन्दी अपनी प्राकृत परम्परा से बिलकुल विलग हो गयी थी। भाषा, छंद तथा काव्य रूपों की दृष्टि से हिन्दी साहित्य अब भी अपभ्रंश के अधिक निकट था। परन्तु भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोगाधिक्य हिन्दी के अधिकाधिक संस्कृतोन्मुख होने की प्रवृत्ति का ही द्योतक माना जायेगा। हिन्दी पर क्रमश: बढ़ते हुए संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रभाव के कारण हिन्दी के भक्ति काल के शृंगार काव्य में संस्कृत के शृंगार काव्य का प्रभाव क्रमश: बढ़ता हुआ प्रतीत होता है।

रीतिकाल तक आते आते हिन्दी संस्कृत से पूर्णत: प्रभावित ही नहीं हुई, वरन् एक प्रकार से वह संस्कृत की स्थानापन्न भाषा बन गयी थी। साहित्य और शास्त्र दोनों के क्षेत्र में हिन्दी कवियों ने संस्कृत ग्रंथों को अपना मुख्य आधार बनाया।[२] सगुणोपासक भक्त कवियों में संस्कृत की सी शास्त्रीयता का जो आग्रह सामान्य रूप से मिलता है वह रीति कवियों में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होने लगता है। परिणाम स्वरूप संस्कृत साहित्य में जो शृंगार काव्य की महत्ता, आधिक्य तथा वैविध्य मिलता है, वह हिन्दी में भी प्राप्त होने लगता है। अन्य कालों की हिन्दी की विभिन्न काव्य धाराओं की तुलना में रीतिकालीन शृंगार काव्य संस्कृत से सर्वाधिक प्रभावित है।[३] परन्तु हिन्दी के सगुणोपासक भक्त कवियों के समान रीतिकालीन कवियों की प्रेरणा-स्रोत तथा आदर्श केवल संस्कृत साहित्य नहीं था, वरन् संस्कृत के साथ साथ प्राकृत, अपभ्रंश और अरबी फारसी का साहित्य भी था। बिहारी आदि रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं के आधार ग्रंथ संस्कृत प्राकृत तथा अपभ्रंश के ग्रंथ तो थे ही,[४] परन्तु उन पर और उनके समकालीन रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में भी प्रेम की पीर आदि के रूप

१- महाकवि मतिराम - डा० त्रिभुवन सिंह, पृ० ५१।

२- वही, पृ० ५३।

३- रीतिकालीन कविता और शृंगार रस विवेचन - राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, पृ० १२७।

४- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ६४।

में विदेशी प्रभाव विद्वानों ने सिद्ध किया है[१]। आशय यह कि जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में तत्कालीन अन्य भारतीय भाषा जैसे प्राकृत आदि के साहित्य की अनेक विशेषताएं मिल जाती हैं, उसी प्रकार रीति कालीन हिन्दी साहित्य में भी तत्कालीन समस्त अखिल भारतीय भाषाओं (संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश, अरबी फारसी) के साहित्यों की अनेकानेक विशेषताएं मिल जाती हैं। अर्थात् रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में संस्कृत साहित्य जैसी सर्वाश्रयता दृष्टिगोचर होती है। यही कारण है कि रीतिकाल में हिन्दी को संस्कृत की स्थानापन्न भाषा कहा गया है तथा उसके साहित्य को तत्कालीन भारतीय साहित्य का प्रतिनिधि साहित्य कहा जा सकता है।

संस्कृत तथा रीतिकालीन हिन्दी के शृंगार काव्यों में अनेक प्रकार की समानताएं मिलती हैं, परन्तु कुछ मौलिक भेद भी हैं, जिनके कारण संस्कृत के शृंगार काव्य से स्वतंत्र रीतिकालीन हिन्दी का शृंगार काव्य अपना व्यक्तित्व प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ संस्कृत के शृंगार काव्य के मुख्य आधार गुप्तकालीन नागर जीवन तथा संस्कृति के विपरीत रीतिकालीन हिन्दी शृंगार काव्य का मुख्य आधार मुगलकालीन नागर जीवन तथा संस्कृति कहा जा सकता है[२]। इसी प्रकार दोनों भाषाओं के शृंगार काव्य रूप, छंद आदि की दृष्टियों से भी भिन्न हैं। आशय यह कि सामाजिक आधार, काव्य रूप, विषय की व्याप्ति तथा क्षेत्र आदि अनेक दृष्टियों से संस्कृत तथा हिन्दी का शृंगार काव्य भिन्न है[३]। रीतिकालीन हिन्दी साहित्य प्रधानत: शृंगार काव्य है। इसीलिए विद्वानों ने इसको शृंगारकाल भी कहा है तथा इस काल में लिखे गये शृंगार काव्य को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया है[४]:

(१) रीतिबद्ध शृंगार काव्य
(२) रीतिसिद्ध ,,
(३) रीतिमुक्त ,,

१- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ६६ से ७४।

२- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ६।

३- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्ठम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १८७।

४- घनानंद भूमिका, पृ० १६, बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० २७, ४२, ५०।

आचार्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई का संबंध प्रधानत: रीतिबद्ध शृंगार काव्य धारा के साथ होने के कारण अन्य शृंगार काव्य धाराओं के विषय में कुछ भी न कह कर केवल रीतिबद्ध शृंगार काव्य धारा के विषय में ही विचार किया जा रहा है ।

रीतिबद्ध शृंगार काव्य धारा रीतिकाल की सर्वाधिक प्रमुख काव्य धारा रही है । हिन्दी कवियों को इस समय दरबारों में स्थान प्राप्त हो चुका था ।[१] उन्हें एक ओर संस्कृत के पंडित-कवियों का सामना करना पड़ता था तथा दूसरी ओर अरबी फारसी के कवियों के साथ प्रतियोगिता करनी पड़ती थी ।[२] परिणाम स्वरूप इन कवियों की रचनाओं में एक ओर शास्त्रीयता का आग्रह बढ़ने लगता है तो दूसरी ओर अरबी फारसी के मुकाबले में शृंगार का कामोद्दीपक रूप प्रधान होता जाता है ।[३] परंतु इन कवियों में विदेशी प्रभाव रीतिमुक्त कवियों की तुलना में कम ही मिलता है ।[४] परन्तु आश्रयदाता की रुचि की तुष्टि के लिए इन कवियों को अपनी कविता में कुछ ऐसे तत्वों का समावेश करना पड़ा था, जिनके कारण इनकी कविता चमत्कार प्रधान कही जा सकती है ।[५] इस धारा की शृंगार कविता मुख्यत: रीति ग्रंथों में उदाहरण रूप में प्राप्त होती है तथा कभी कभी मुक्तक संग्रहों के रूप में भी मिलती है, परन्तु सर्वत्र वह लक्षणानुसारी है ।[६]

विद्वानों की मान्यता है कि रीति साहित्यकारों का दृष्टिकोण ऐहिक था । भक्ति धारा के कुछ कवियों को छोड़कर अन्य कवियों का दृष्टिकोण आध्यात्मिक नहीं था । फिर भी संस्कार रूप में भक्ति का प्रभाव विद्यमान था । रीति युग के कवियों ने वास्तविक जीवन में व्याप्त आशाओं ,आकांक्षाओं , लालसाओं आदि का यथातथ्य चित्रण किया है। जो अत्युक्ति या अतिशयोक्ति है, वह आवश्यक के चुनाव

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६६२ ।

२- बिहारी - आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० ४५ ।

३- वही, पृ० ४६ ।

४- वही ।

५- वही ।

६- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० २१ ।

या अनावश्यक के त्याग के परिणाम स्वरूप है।[१] रीतिकाल की इस काव्य धारा के विषय में विद्वानों ने विविध प्रकार से बहुत कुछ लिखा है। अत: उसके विषय में यहां अधिक कुछ न कुछ कह कर इस परम्परा के गुजरात में प्रारम्भ तथा विकास के विषय में कुछ विचार किया जा सकता है।

गुजरात की हिन्दी काव्य परम्परा का अध्ययन करते समय, गुजरात में लिखे गये हिन्दी के शास्त्रीय साहित्य तथा शास्त्रीय काव्य की चर्चा की जा चुकी है।[२] इस प्रसंग में यहां यह उल्लेखनीय है कि जब से गुजरात में उक्त प्रकार के हिन्दी साहित्य का सृजन प्रारम्भ होता है तभी से रीतिबद्ध शृंगार की परम्परा भी प्रारम्भ होती है। इस परम्परा के विकास में, हिन्दी भाषी प्रदेशों के समान, राजवंशी कवियों तथा राजाश्रित कवियों का विशेष रूप से योगदान रहा है। गुजरात में राजाश्रय प्राप्त करने का सौभाग्य हिन्दी के कवियों को ही प्राप्त था तथा राजाश्रित कवियों के समान गुजरात में भी इन कवियों का मुख्य विषय शृंगार ही रहा है। कुछ वैष्णव भक्त कवियों को छोड़ कर, जिनमें शृंगार का स्वरूप शास्त्र सम्मत या शास्त्र शासित नहीं मिलता, शेष सभी शृंगारी कवियों ने शृंगार का वही रूप स्वीकृत किया है, जो हिन्दी के रीतिबद्ध कवियों को ग्राह्य था। दयाराम जैसे भक्त कवियों ने भी शृंगार का शास्त्रीय रूप ही ग्रहण किया है। वैसे इस परम्परा के प्रधान कवियों में भुज के महाराव लखपति सिंह, उनके दरबार के कवि कनक कुशल तथा कुंवर कुशल तथा राजकोट के महाराज महेरामण सिंह, जूनागढ़ के राजाश्रित कवि आदितराम, मूली के राजाश्रित कवि कालिदास, भुज के राजाश्रित कवि केशव अयाची, तथा गोपाल जगदेव, जसुराम, जयकृष्ण, दलपतराय, वंशीधर, बेनीदास आदि कवियों का नाम लिया जा सकता है।[३] आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के पूर्व ही गुजरात में रीतिबद्ध शृंगार काव्य की प्राचीन परम्परा चली आ रही थी।

१- हिन्दी रीति साहित्य - डा० भगीरथ मिश्र, पृ० १५।

२- द्रष्टव्य है : अध्याय तृतीय।

३- इन कवियों की रचना आदि के विषय में देखिए, परिशिष्ट, द्वितीय अ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई का कवित्व रीतिकालीन हिन्दी कवियों से न केवल प्रभावित था, वरन् रीतिकालीन हिन्दी कवित्व ही उनका आदर्श भी था । अत: भारतेन्दु काल के अन्य हिन्दी कवियों के समान ही उनकी कविता रीतिकालीन कविता के समान ही थी । रीतिबद्ध शृंगार की परम्परा[1] भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग में कुछ अपवादों के साथ चलती ही रही । गोविन्द गिल्ला भाई अपने युग की नवीन विशेषताओं को अपने काव्य में स्वीकृत नहीं कर सके । उन्होंने प्राचीन परिपाटी का ही अनुगमन किया था । यह बात उनके शृंगार काव्य के विषय में भी सत्य है ।

आशय यह कि रीतिकाल के समाप्त हो जाने के पश्चात् तथा भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग के वातावरण में विकसित होने का अवसर प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी गोविन्द गिल्ला भाई की शृंगार कविता में रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों की अनेक सामान्यताएं विशेषताओं के रूप में प्राप्त होती हैं, जिससे सिद्ध होता है कि इनका कृतित्व सामान्य रूप से तथा कवित्व विशेष रूप से रीतिबद्ध कवियों की रूढ़ियों से आबद्ध था, जिसका आगे विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है ।

रीतिबद्ध कवियों की कविता शास्त्रानुशासन की सीमाओं का अतिक्रमण नहीं करती, तथा शृंगार कविता तो विशेष रूप से शास्त्र सम्मत होने के साथ साथ काव्य शास्त्र की सर्वाधिक प्रधान विषय भी रही है । अत: गोविन्द गिल्ला भाई की शृंगार कविता का अध्ययन शास्त्रीय दृष्टि से ही करना अधिक उपयुक्त होगा । आधुनिक समीक्षा प्रणाली उसकी उपकारक हो सकती है, आधार नहीं । शृंगार रस के विषय में गोविन्द गिल्ला भाई ने स्वतंत्र रूप से लिखा है अत: शृंगार रस संबंधी उनकी धारणाओं तथा उनका शास्त्रीय विवेचन आचार्यत्व के अध्ययन के प्रसंग में ही किया जयेगा । यहां केवल शृंगार रस की शास्त्रीय दृष्टि से गोविन्द गिल्ला भाई की शृंगार रचनाओं का ही अध्ययन किया जा रहा है ।

१- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश ६६६ ।

३।२ गोविन्द गिल्ला भाई का शृंगार काव्य

रीतिकालीन हिन्दी कवियों की शृंगार रचनाएं प्रधानत: या तो लक्षण ग्रंथों में उदाहरण रूप में प्राप्त होती हैं या मुक्तक संग्रहों के रूप में।[१] गोविन्द गिल्ला भाई की शृंगार रचनाएं भी प्रधानत: इन्हीं दो रूपों में मिलती हैं। रीति ग्रंथों में शृंगार का चित्रण प्राय: निम्नलिखित चार रूपों में मिलता है[२]।

१- शृंगार रस के मुख्य अवयवों के रूप में
२- नायिका भेद के रूप में
३- नखशिख वर्णन के रूप में
४- उद्दीपन के रूप में

साथ ही कुछ कवियों के प्रबंध काव्यों में भी शृंगार का चित्रण मिलता है। आशय यह कि रीतिकाल में शृंगार चित्रण प्रधान रूप से लक्षण ग्रंथों में तथा मुक्तक संग्रहों में मिलता है तथा गौण रूप में प्रबन्धों में। गोविन्द गिल्ला भाई के समूचे साहित्य में शृंगार काव्य लगभग इसी रूप में प्राप्त होता है, जिसका विवरण निम्न-लिखित तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है :

ग्रंथ का नाम	ग्रंथ प्रकार	शृंगार चित्रण प्रकार
१- शिखनख चंद्रिका	मुक्तक संग्रह	शिखनख वर्णन
२- राधा रूप मंजरी	,,	नखशिख वर्णन
३- राधामुख षोडशी	,,	केवल मुख वर्णन
४- पयोधर पच्चीसी	,,	केवल कुच वर्णन
५- नैन मंजरी	,,	केवल नैन वर्णन
६- छवि सरोजिनी	,,	समग्र रूप वर्णन
७- समस्या पूर्ति प्रदीप	,,	नायिका भेद, नखशिख वर्णन आदि

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ६६१।
२- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपति चंद्र गुप्त, पृ०२४५।

८- शृंगार सरोजनो — रीति ग्रंथ — नायिका नायक आदि भेद वर्णन
९- प्रवीण सागर की बारह लहरी — प्रबन्ध काव्य — विरह वर्णन
१०-अन्य लक्षण ग्रंथों में भी शृंगार के उदाहरण मिलते हैं।

इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने उसी रूप में शृंगार कविता लिखी है, जिस रूप में रीतिकालीन कवियों ने लिखो है। अत: परंपरानुसार ही आगे उनकी शृंगार कविता का अध्ययन किया जा सकता है।

३।२।० विभाव विवेचन

काव्य शास्त्रों में विभावों को स्थायी भावों का उद्बोधक कहा गया है[१] इनके आश्रय से रस प्रगट होता है। अत: इन्हें रस का कारण, निमित्त या हेतु भी कहा जाता है।[२] शृंगार रस के स्थायी भाव रति के आलंबन नायक नायिका वस्तुत: शृंगार रस के आधार हैं, जो उद्दीपन की भुमिका में, उद्दीपन के साथ शृंगार रस के कारण सिद्ध होते हैं। आलंबन की दो अवस्थाओं, संयोग और वियोग के अनुसार तद्गत भाव की भी दो अवस्थायें हो जाती हैं। अत: शास्त्रों में संयोग शृंगार और वियोग शृंगार के नाम से इस रस के दो भेद किये गये हैं। अतएव गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार काव्य का अध्ययन, निम्नलिखित खंडों में किया जा सकता है :

१- आलम्बन विवेचन
२- संयोग शृंगार विवेचन
३- वियोग शृंगार विवेचन
४- उद्दीपन विवेचन

३।२।१ आलंबन विवेचन

आलंबन के अंतर्गत नायक नायिका माने जाते हैं,[३] जिनका वर्गीकरण सामान्यत: रूप, गुण, शील अवस्था आदि के अनुसार किया जाता है।[४] काव्य ग्रंथों में नायक

१- तुलनीय है : साहित्य दर्पण ३।३९।
२- ,, : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७१८।
३- ,, : साहित्य दर्पण ३।३८।
४- ,, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ३९३।

नायिका के रूप, गुण, शील तथा शारीरिक मानसिक अवस्था आदि का चित्रण होता है। रीति कालीन शृंगारिक कवियों ने नायिका भेद तथा तदनुसार नायिका वर्णन में ही अधिक रुचि प्रदर्शित की है।[१] यद्यपि अनेक कवियों ने नायकों का वर्णन भी किया है, परन्तु वह रीतिकाल में केवल रीति ग्रंथों में ही रस विवेचन की पूर्णता के हेतु किया गया है। स्वतंत्र रूप से जैसे नायिका भेद के ग्रंथ मिलते हैं, वैसे नायक भेद के ग्रंथ नहीं मिलते। अनेक रीति कालीन कवियों ने नायिका भेद के स्वतंत्र ग्रंथ तो लिखे ही हैं, साथ ही केवल नायिका के रूप वर्णन के लिए नखशिख वर्णन आदि के रूप में अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखे हैं।[२] वैसे भी स्वतंत्र संग्रह आदि स्फुट रचनाओं में भी नायिका विषयक छंद अधिक प्राप्त होते हैं। आशय यह कि रीतिकालीन शृंगारिक कवियों ने जैसी तथा जितनी रुचि नायिका भेद तथा रूप वर्णन में दिखाई है, वैसी ही तथा उतनी ही रुचि गोविन्द गिल्ला ने नायिका भेद तथा रूप वर्णन में प्रदर्शित की है।

गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार 'काव्य में नायक विषयक छंद स्वतंत्र रूप में नहीं मिलते, केवल 'शृंगार सरोजिनी 'नामक रचना में, जहां शृंगार रस के आलंबन के रूप में नायक नायिका भेद की विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है, नायक भेद के प्रसंग में नायक के रूप गुण शील आदि का वर्णन किया है।[३] शेष सभी ग्रंथों में नायिका के रूप गुण आदि का ही वर्णन है। 'नखशिख चन्द्रिका ', 'राधा रूप मंजरी ', 'राधा मुख षोडशी ', 'छवि सरोजिनी ', 'पयोधर पच्चीसी ', 'नैन मंजरी 'आदि ग्रंथों में नायिका के रूप का वर्णन स्वतंत्र रूप से किया गया है, जबकि 'शृंगार षोडशी ', 'भूषण मंजरी ', 'शृंगार सरोजिनी आदि रचनाओं में नायिका के रूप का वर्णन उदाहरण रूप में प्राप्त होता है। शब्द विभूषण आदि अलंकार शास्त्र के ग्रंथों में शृंगार विषयक जो छंद मिलते हैं, वे प्राय: सभी नायिका से संबंधित हैं। इसी प्रकार 'समस्या पूर्ति प्रदीप' जैसी रचनाओं में भी शृंगार विषयक छंदों का एक मात्र विषय नायिका भेद ही है। आशय यह कि रीतिबद्ध शृंगारी कवियों की सामान्य परम्परा के समान गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार काव्य की प्रधान आलंबन नायिका ही है, जिसके रूप का वर्णन कवि ने स्वतंत्र शृंगार काव्य संग्रह ग्रंथों तथा रीति ग्रंथों में किया है।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२६।

२- वही, पृ० २२६।

३- देखिए, शृंगार सरोजिनी, कलिका षष्टम्।

इस प्रकार सुस्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार काव्य का मुख्य विषय नायिका वर्णन ही है । रीतिकालीन शृंगारी कवियों के नायिका वर्णन का अध्ययन विद्वानों ने अनेक प्रकार से किया है । परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार काव्य में नायिका के रूप चित्रण या सौन्दर्य वर्णन के ही प्रधान होने के कारण उसी का विशेष रूप से अध्ययन किया जा रहा है अन्य विषयों का विवेचन प्रसंगानुसार उसी के अन्तर्गत किया जा सकता है ।

रूप या सौन्दर्य शब्द की कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन ही नहीं, असम्भव भी है[१]। परन्तु साहित्य में नायिका के सौन्दर्य चित्रण के अन्तर्गत प्रधानत: नायिका के शारीरिक सौन्दर्य का अध्ययन ही किया जाता है, जिसके अन्तर्गत रूप, चेष्टा, मुद्रा, प्रभाव आदि का अध्ययन किया जाता है, जबकि मानसिक सौन्दर्य चारित्रिक गुण होने के कारण, प्रबन्ध काव्यों में ही चरित्र चित्रण के अन्तर्गत अध्ययन का विषय बनता है । गोविन्द गिल्ला भाई प्रधानत: मुक्तककार कवि हैं अत: उनके शृंगार काव्य की नायिका के चरित्र चित्रण का प्रश्न ही नहीं उठता । इसलिए नायिका के सौन्दर्य के स्वरूपात्मक तथा प्रभावात्मक दोनों पक्षों का ही आगे अध्ययन किया जा रहा है ।

रूप या सौन्दर्य चित्रण की अनेक परिपाटी हो सकती है/ परन्तु भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से हो नायिका के शरीर के विभिन्न अवयवों का क्रमबद्ध वर्णन करने की एक परंपरा चली आ रही है[२]। रूप चित्रण की इस परंप्ररा को काव्यशास्त्र का अनुमोदन भी प्राप्त है[३]। इसीलिए रीतिबद्ध शृंगारी कवियों द्वारा इस परंपरा के अनुसार नायिका का रूप चित्रण नखशिख या शिखनख वर्णन के रूप में विशेष रूप से मिलता है । प्राचीन साहित्य में महाभारत[४], बाल्मीकि रामायण[५], कालिदास कृत कुमार संभव[६], आदि अनेक रचनाओं में नायिका का रूप चित्रण उक्त प्रकार से प्राप्त होता है । संस्कृत के समान प्राकृत और अपभ्रंश के भी अनेक प्रबन्ध काव्यों में भी रूप चित्रण

१- तुलनीय है : देव और उनकी कविता - डा० नगेन्द्र, पृ० ६६ ।

२- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपति चंद्रगुप्त, पृ०३०४ ।

३- तुलनीय है : वही, पृ० ३८ ।

४- महाभारत, वनपर्व ४३। ७-११ ।

५- बाल्मीकि रामायण, बालकांड, अध्याय ३२ । ६- कुमार संभव, प्रथम सर्ग ।

की यह परिपाटी मिल जाती है ।[१] मुक्तकों में नायिका के शरीर के विभिन्न अवयवों के सौन्दर्य का चित्रण स्फुट रूप में तो मिल जाता है, परन्तु वह नख से शिख या शिख से नख तक के किसी क्रम विशेष के रूप में सामान्यत: नहीं मिलता । प्राकृत में हाल की गाथा सप्तशती या संस्कृत में अमरुक के अमर शतक आदि रचनाओं में नायिका के शरीर के विभिन्न अवयवों के सौन्दर्य के चित्रण के सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं, परन्तु उनमें कोई विशेष क्रम नहीं मिलता । हां, कुछ स्तोत्र काव्यों में आराध्य देवी देवताओं के शारीरिक सौन्दर्य का क्रमबद्ध वर्णन अवश्य मिलता है ।

आशय यह कि रीतिकाल से पूर्व ही संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य में हमें एक विशिष्ट क्रम योजना में नायिका के रूप चित्रण की जो परम्परा मिलती है, वही आगे चल कर हिन्दी के कवियों द्वारा भी स्वीकृत होती है । विद्यापति तथा सूर जैसे कवियों के एक एक गीत या पद में जो नखशिख वर्णन मिलते हैं, वे यही इंगित करते हैं कि प्राचीन साहित्य में केवल प्रबन्धों में क्रमबद्ध रूप से नखशिख वर्णन की जो परिपाटी चली आ रही थी, वह अब मुक्तकों का भी विषय बनने लगी थी । आगे चल कर रीतिकाल में नखशिख वर्णन एक प्रकार से एक मुक्तक काव्य रूप के आधार के रूप में स्वीकृत कर लिया जाता है । आशय यह कि रीतिकाल में नायिका का क्रमबद्ध रूप चित्रण एक काव्य रूप, सामान्य आधार के रूप में विशेष रूप से विकसित हुआ ।[२] तथा अनेकानेक ग्रंथ केवल नखशिख वर्णन को ले कर लिखे जाने लगे ।[३] इतना ही नहीं वरन् अलंकार शेखर और कवि कल्प लता आदि शास्त्रीय ग्रंथों में नायिका के प्रत्येक अंग के लिए उपमानों की सूची भी तैयार होने लगी ।[४] इस प्रकार मूलत: प्रबन्ध काव्य की एक रूप चित्रण शैली स्फुट मुक्तकों तथा स्तोत्र काव्यों के माध्यम से विकसित होती हुई तथा काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का अनुमोदन पा कर रीतिकाल में नखशिख वर्णन के रूप में एक स्वतंत्र मुक्तक काव्य के रूप में स्थापित तथा विकसित हो गयी ।

१- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपतिचंद्रगुप्त, पृ० ३०४ ।

२- वही, पृ० ३०४ ।

३- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२६ ।

४- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास , षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ०२०३ ।

सैद्धान्तिक रूप से उक्त क्रमबद्ध रूप चित्रण की दो प्रणाली मानी गयी है : १- नखशिख वर्णन, २- शिखनख वर्णन । केशवदास ने इन दो प्रणालियों की व्यवस्था इस प्रकार दी है :

नख ते सिख लौं वरनियें, देवी दीपति देखि ।
सिख ते नख लौं मानुषी, केशवदास विसेषि ।[१]

अर्थात् नख से शिख इस क्रम में देवी का वर्णन तथा शिख से नख इस क्रम में नारी का वर्णन किया जाना चाहिए । वस्तुत: केशवदास की उक्त व्यवस्था इस मान्यता पर आधारित प्रतीत होती है कि काव्य में रूप वर्णन स्त्री जाति का ही हो सकता है, पुरुष का नहीं। परन्तु केशवदास की उक्त मान्यता के विपरीत पुरुषों का भी रूप चित्रण मिलता है । नखशिख वर्णन की परम्परा का सम्बन्ध मूलत: भारतीय उपासना पद्धति के विशेष अंग ध्यान से है,[२] जिसके अनुसार देवी और देवता दोनों ही ध्यान के विषय हो सकते हैं । और उनके रूप का वर्णन नखशिख क्रम में किया जा सकता है । शैव वैष्णव आदि अनेक उपासना पद्धतियों में अनेक श्लोक इस प्रकार के ध्यान के प्राप्त होते हैं तथा हिन्दी के भक्त कवियों द्वारा भी राम कृष्ण के रूप का वर्णन भी इसी क्रम में अनेक स्थानों पर किया गया है । परन्तु केशवदास की मान्यता के अनुसार उसे नखशिख वर्णन नहीं कहा जा सकता । वस्तुत: केशवदास की उक्त मान्यता उनकी रुचि तथा उनके युग की सामान्य धारणा की ओर इंगित करती है । रीतिकालीन कवियों ने राधा कृष्ण को जिस प्रकार सामान्य नायिका नायक के रूप में गृहीत किया था[३], उसी प्रकार उन्होंने उनका रूप चित्रण भी किया है । परन्तु जिस प्रकार वे राधा कृष्ण के नाम तथा उनसे संबंधित धार्मिक मान्यताओं को ग्रहण किये हुए थे, उसी प्रकार वे नख शिख और शिख नख वर्णन के वाह्य भेद को बनाये रहे थे । वस्तुत: उनमें कोई मौलिक भेद नहीं मिलता । आशय यह कि रीतिकालीन कवियों द्वारा लिखित नखशिख वर्णन वास्तव में शिखनख वर्णन ही हैं, क्रम भेद के सिवाय उनमें तथा तथाकथित शिखनख वर्णनों में अन्य किसी प्रकार अन्तर नहीं है।[४] यह तथ्य

१- हिन्दी साहित्य का अतीत, शृंगार काल- आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ०३६७ पर उद्धृत
२- हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास - जितेन्द्रनाथ पाठक, पृ० ७२ ।
३- हिन्दी साहित्य को, पृ०१९६ ।
४- वही, पृ० ११२, ११३ ।

स्वयं केशवदास के नख शिख और शिख नख के वर्णन क्रम की तुलना से स्पष्ट हो जाता है[१]।

गोविन्द गिल्ला भाई ने परम्परा प्राप्त रूप वर्णन की नख शिख और शिख नख दोनों प्रणालियों में एक एक रचना की है। राधा रूप मंजरी, उनकी प्रथम प्रणाली की रचना है, जबकि शिख नख चंद्रिका द्वितीय प्रणाली की। केशवदास के समान गोविन्द गिल्ला भाई भी नखशिख और शिख नख वर्णन के भेद के विषय में सचेत थे और उनकी दृष्टि भी केशवदास के समान संकुचित थी। उन्होंने लिखा है कि :

> राजत रस सिंगार के, आलम्बन तिय अंग ।
> तातें तिन शिखनख सुभग, बरनों लाइ उमंग ।।
> शिख तें नख लों मानुषी, नख तें शिखलों देव ।
> तिय तन बरनन के विमल, भाखत कवि इमि भेव ।।
> यातें यह शिख नख सुभग, मानव रीति विचार ।
> शिख तें नख लों कहत हों, यथा बुद्धि अनुसार[२]।।

स्पष्ट है कि गोविन्द गिल्ला भाई केशवदास से यहां अत्यधिक प्रभावित हैं। यहां यह बात भी उल्लेखनीय है कि उक्त दोहों में कवि ने शृंगार के आलंबन के रूप में तिय (नायिका) ही नहीं, उसके अंगों को माना है तथा केशवदास के समान नख शिख वर्णन के विषय के रूप में केवल देवी को स्वीकृत न कर, देव मात्र को उसका विषय बता दिया गया है। अन्यत्र गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार के आलंबन के रूप में नायक नायिका दोनों को माना है[३], जो परवर्ती रचना में है। अत: उक्त दोहों को सिवाय इसके कि कवि नखशिख और शिखनख के भेद के विषय में जागरूक था, अन्य किसी सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्व प्रदान नहीं किया जा सकता है।

१- हिन्दी साहित्य का अतीत, शृंगार काल, पृ० ३३८ । आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र

२- गोविन्द ग्रंथमाला पृ० १४८, शिखनख चंद्रिका छं० २ से ४ ।

३- शृंगार सरोजिनी, ह०प्र०सं० पृ० १ ।

राधा रूप मंजरी तथा शिखनख चन्द्रिका के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों रचनाओं में वर्णित अंगों के क्रम के अंतर के अतिरिक्त और कोई विशेष अन्तर नहीं है। शिखनख चन्द्रिका में नायिका के जिन अवयवों का वर्णन किया गया है प्राय: उन सभी का वर्णन राधा रूप मंजरी में भी मिल जाता है। इतना ही नहीं वरन् दोनों रचनाओं के रूप वर्णन के अप्रस्तुत विधान में भी अत्यधिक समानता है। उदाहरणार्थ मांग वर्णन के एक एक छंद दोनों रचनाओं के देखे जा सकते हैं :

अलक अरन्य मांहि वीथिका विमल कैधौं,
    श्यामगिरि शिखर पे गंग जल धार है।
कैधौं शिर शान पर हेम की लकीर राजे,
    कैधौं मेघमालन में जग की कतार है।
कैधौं रसराज बाग क्यारिन की सारिणी सी,
    बहत बिमल महा चारु सुखकार है।
कैधौं कवि गोविन्द ये सुन्दरी के शीश पर
    सुभग सपेत मांग ओपत अपार है[1]।

यमुना उदक बीच गंग जल धार बहे,
    परमा पुनीत ताकी विमल विभात है।
कैधौं रसराज खेत श्यामल सुहाय तामें,
    हास्य रस सारिणी की शोभा सरसात है।
कैधौं मेघ मालन में बग की कतार लसे,
    आभा अभिराम ताकी सोहे सुखदात है।
कैधौं कवि गोविंद ये कीरति कुमारी शिर[2],
    मांग मनभाय महा ओप अवदात है।

(राधा रूप मंजरी छं० ७७)

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १५, शिखनख चंद्रिका० छं० १२।
२- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २२६।

इन दोनों छंदों के आधार पर कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने जो नखशिख तथा शिखनख प्रणाली में जो विभिन्न रचना की है, उनमें क्रम भेद के अतिरिक्त और कोई विशेष अन्तर नहीं है।[१] आशय यह कि शास्त्रीयता के आग्रह तथा परम्परा के पालन के हेतु ही कवि ने परम्परा प्राप्त रूप चित्रण की दोनों प्रणालियों में रचना की है। केशवदास के नखशिख तथा शिखनख में भी क्रम भेद के अतिरिक्त और कोई विशेष अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता,[२] केशवदास के नखशिख में शिखनख की अपेक्षा अंग प्रसाधन, भूषण, दीप्ति, गति आदि का वर्णन अधिक मिलता है,[३] जबकि गोविन्द गिल्ला भाई की उक्त दोनों रचनाओं में इनका समान रूप से वर्णन किया गया है।[४] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने रीतिबद्ध शृंगारी कवियों की परंपरा का अनुगमन किया है। परन्तु वे जैसे अपने काव्यादर्श में केशवदास के अधिक निकट हैं, वैसे ही रूप चित्रण में भी केशवदास के अधिक समान हैं। इस साम्य को गोविन्द गिल्ला भाई पर केशवदास का प्रभाव भी कहा जा सकता है।

परंपरानुसार नखशिख या शिखनख वर्णन में कवियों ने नायिका के निम्नलिखित अंगों का वर्णन किया है : केश, वेणी, जूड़ा, मांग, भाल, भृकुटी, नेत्र, पलक, वरुनी, नासिका, कपोल, कपोल गाड, कपोल तिल, अधर, दन्त, चिबुक, चिबुक तिल, श्रवण, ग्रीवा, भुज, करतल, अंगुलियां, कुच, कुच संधि, नाभि, रोम राजि, कटि, नितम्ब, उरु, पिंडली, चरण, पदनख।[५] इसके अतिरिक्त आभा, लावण्य, कान्ति, मृदुलता, सुकुमारता आदि सौन्दर्य की विशेषताओं[६] तथा मेंहदी महावर आदि प्रसाधन, टीका हार तरौना आदि आभूषण और कंचुकी, घाघरा साड़ी आदि वस्त्रों का भी वर्णन किया गया है।[७] आशय यह कि रीतिबद्ध शृंगारी कवियों

१- तुलनीय है : वही, पृ० १४८।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य का अतीत, शृंगारकाल, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ०३३८।

३- वही।

४- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १६४ से १६७ तथा २३३ से २३४।

५- हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपतिचंद्रगुप्त, पृ० ३९से४१।

६- वही, पृ०४२।

७- वही, पृ० ४३।

ने नखशिख या शिखनख वर्णन के अन्तर्गत नायिका के शरीर के विभिन्न अंगों के सौन्दर्य वर्णन के साथ साथ नायिका के सौन्दर्य की सूक्ष्म विशेषताओं, अंग प्रसाधनों अंग वस्त्रों तथा अंग आभूषणों का भी वर्णन किया है। गोविन्द गिल्ला भाई की विभिन्न रचनाओं में इन सभी का वर्णन मिलता है, जिसे निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

तालिका १ विविधांग वर्णन

वर्ण्य विषय	शिखनख चंद्रिका	राधारूप मंजरी	समस्यापूर्ति	नैन मंजरी	पयोधर प०	राधामुख षा
कुटे केश	६, १०	७३, ७४, ७५	पृ० १५			
मांटी	११	७६				
मांग	१२	७७				
वेनी	१५, १६	७८				
लट	१८	७६	पृ० २६			
जुडा	१६, २०	८०	पृ० १७			
भाल	२१	७१				
भ्रकुटी	२२	७०				
नैन	२४	६२	पृ० २६, ४८	१ से ७६		
पलक	२५	६३		७७ से ७८		
बरुनी	२६	६४		७६, ८०		
तारे	२७	६५	पृ० १	८१, ८२		
लाल डोरे	२८	६६		८३ से ८५		
कान	३३	६१				
कपोल	३४	५६				
कपोलगाड	३५, ३६					
कपोल तिल	३७	६०				
नासिका	३८	५८				
नासिकावेह	३६					

अधर	४३	४८	पृ० १७	
दंत	४७		पृ० ४१	
स्वेत दंत	४८,४६	४६		
रक्त दंत	५०	५०		
श्याम दंत	५१	५१		
रसना	५३	५२		
चिवुक	५०	४७		
चिवुक तिल	६१			
मुख मंडल	६२ से ६८	४३, ४२	पृ०१४,३१,३२	
सीतला दाग	६६			
ग्रीवा	७०	३८		
ग्रीवा रेखा	७१			
पीठ	७४	३७		
वेनीसहित				
पीठ	७५			
सांग भुज	७६	३६		
बाहु	७६			
कलाई		३३		
कर	८०	३५		
करतल	८३	३०		
करतल				
रेखा	८४	३१		
करांगुलि	८७	२६		
करांगुली				
नख	८८	२८	पृ०३८	
कुच	८६ से ६१	२७	पृ०२६,४५,४६	१ से २५
कुचाग्र	६२			

कुचांत	६३		
उदर	६५	२६	
रोमावलि	६६	२५	
त्रिवलि	६७	२४	
नाभि	६८, ६६	२३	
कटि	१००से१०२	२१	
नितम्ब	१०३	२०	
जघन	१०५से१०७		
उरु	१०८से१०६	१६	
पींडुरी	११०	१८	
मुरवा	१११	१७	
गुलफ	११३	१६	
एड़ी	११४	१५	
प्रपद	११५		
पदांगुलि	११७	१३	
पदांगलि			
नख	११८	१४	
पगतल	११६	११	
पग	१२१, १२२	६	
सर्वांग	१२७ से१३१	८१ से ८५	पृ० ४, ६, ४८

तालिका २ विविधांग विशेषता वर्णन

वर्ण्य विषय	शिखनख चंद्रिका	राधारूप मंजरी	नैन मंजरी	छवि सरोजिनी	समस्या पूर्ति प्रदीप
भृकुटिवक्रता	२३				
चितवनि	३०	६८	८८ से ९१		
कटाक्ष	३१,३२	६९	९२ से १०२		
अधरामृत	४७				
बानी	५४	५३			
वचन	५५	५४			
वचन मिठाई	५६				
हास्य	५७,५८	५५,५६			पृ०३३,३०
मुख सुगंध	५९	५७			
मुख कान्ति	६५से ६८	४४ से ४६			पृ० ६,१०,५६
पग कान्ति	१२३				
पग सुकुमारता	१२४	१०			
पग गति	१२५, १२६				
सर्वांग प्रभा	१३४ से१३७	८८ से ९०			पृ० ५६,१२
सर्वांग सुवास	१३८	९२			
सर्वांग सुकुमारता	१३९	९१			
सर्वांग छवि	१४२	९५से ९७		४से ६७	पृ०१,५,६,११,१९ ३६,३८

तालिका ३ अंग प्रसाधन

वर्ण्य विषय	शिखनख चंद्रिका	राधारूपमंजरी	भूषणमंजरी	शृंगारषोडशी	नैनमंजरी	समस्यापूर्ति प्रदीप
सिन्दूर मांग	१३		१८, ६३			
नयनांजन	२६	६७	१०१	२६	८६, ८७	
मेंहदी	८५, ८६	३२	११०			पृ०३४
पगतल						
पावक	१२०	१२	११२			
भाल बिन्दु			२२, ६६, ६७			पृ० २
केसर खौर			२३, ६६	२६		
मुखराग			१०३	३५		
अंगराग			१०५	२०		
अंगसुगंध						
लेपन			१०८			
केश रचना				२२, २४		

तालिका ४ अंग वस्त्र

वर्ण्य विषय	शिखनख चंद्रिका	राधारूप मंजरी	शृंगार षोडशी	समस्यापूर्ति प्रदीप
कंचुकी	६४		४०	
घांघरी	१०३	२२		
साडी	१०४	६३	५४, ५५	पृ० १३
घूंघट	१४१	६४		

तालिका ५ अंग आभूषण

वर्ण्य विषय	शिखनखचंद्रिका	राधारूपमंजरी	भूषणमंजरी	शृंगार षोडशी	समस्यापूर्ति प्रदीप
शीश फूल	१४		१५, १६	२४	
टीको		७२	२४	२६, २७	पृ० २८
भवियां	१७		२०		
बेसर	४० से ४२		३४ से ३६		
ग्रीवाभूषण	७२		४०		
भुजभूषण	७७				
प्रपदभूषण	११६		७६		
सर्वांगभूषण	१३२, १३३	८६, ८७			
चाँप	५२				
धुकधुकी	७३	४०, ४१	४१		पृ० २८
मोतीमाला		३६	४४	३७	
चंद्रहार			३८		
हमेलहार			३९		
चंपाकली				३८	
दावनी			२५		
कर्णफूल			२७	२७	
नथुनी			३३	३३	
कर्धनी			६६	४६	
बाजूबंद	७९		४६, ४७		
चूरी	६१, ८२	३४	५५, ५४		
कड़े	११२		७१	५१	
पायल			६८	४८	
पायजे			६९	४९	
जेहरी			७०	५०	

विछिया	७३	५२
पन्ना	२८	
बला	२९	
झूमक	३०	
लोलक	३१	
जोसन	४८	
कंकन	५०	
पहुंचो	५१	
कटक	५२	
नौगरी	५३	
हथफूल	५६	
अंगूठी	६१	
मुद्रिका	६२	
आरसी	६४	
चुटकी	७४	
अनवट	७५	

इन तालिकाओं में नायिका के अंग, अंगों की विशेषता, अंग प्रसाधन, अंग वस्त्र तथा अंग आभूषणों की दी गयी विशद नामावली से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका का रूप चित्रण बड़ी व्यापकता से किया है। बलभद्र कवि कृत नखशिख वर्णन में केश, वेणी, मांग, भाल, बिन्दु, भ्रकुटी, पलक, चिवनि, कूव, नासिका वेधु, नथ, कपोल का गड्ढा, तर्‍यौना, मुख सुगंध, चिवुक, करतल, उंगली, मेंहदी, जावक, पदतल, पदनख, नुपूर, विछिया, गति, के साथ सोलह शृंगार तथा बारह भूषणों का ही वर्णन मिलता है,[1] जबकि गोविन्द

१- तुलनीय है: हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपति चंद्र गुप्त, पृ० ३०।

गिल्लाभाई ने सोलह शृंगार तथा बारह भूषणों पर स्वतंत्र ग्रंथ "शृंगार षोडशी" तथा "भूषण मंजरी" के रूप में लिखे हैं तथा शिखनख चंद्रिका और राधा रूप मंजरी के रूप में शिखनख तथा नखशिख प्रणाली में अलग अलग रूप चित्रण किया है । रीतिकाल के अन्य प्रतिनिधि कवि जैसे बिहारी तथा आचार्य कवि जैसे मतिराम में भी नायिका के रूप का चित्रण इतने विस्तार केसाथ नहीं मिलता[१]। आशय यह कि विस्तार, जो गोविन्द गिल्ला भाई के कृतित्व की एक सामान्य विशेषता है, वह इनके नायिका रूप चित्रण में भी स्पष्टता परिलक्षित होती है ।

गोविन्द गिल्ला भाई के नायिका रूप चित्रण का उक्त विस्तार मुख्यत: दो रुपों में मिलता है, १- अधिक अंगों, प्रसाधनों आदि के वर्णन के रूप में , २- एक ही विषय पर अनेक छंदों के लेखन के रूप में । रीतिकाल के किसी कवि ने यदि नायिका के नेत्रों के विषय में लिखा है और किसी अन्य कवि ने नेत्रों की अन्य कुछ विशेषताओं का वर्णन किया है तो गोविन्द गिल्ला भाई ने उनमें से किसी एक का वर्णन न कर सभी का वर्णन किया है । इस प्रकार उनका वर्णन व्यापक अवश्य हो गया है, परन्तु उनमें से एक भी विशेषता ऐसी नहीं है, जो उनके पूर्ववर्ती किसी कवि में न मिलती हो , और जो उनकी मौलिक उद्भावना कही जा सकती हो । परन्तु संग्रहात्मक विस्तार गोविन्द गिल्ला भाई के नायिका रूप चित्रण की एक विशेषता अवश्य कही जा सकती है, जो रीतिकालीन सामान्य नायिका रूप चित्रण का समवाय जैसा होने के कारण समष्टि रूप में उसका प्रतिनिधित्व कर सकता है। परन्तु यह प्रतिनिधित्व रीतिकालीन रूप चित्रण की सामान्यताओं का ही कहा जा सकता है, विशेषताओं का नहीं । क्योंकि गोविन्द गिल्ला भाई ने न तो नायिका के सौन्दर्य के भावात्मक पक्ष का स्पर्श किया है और न ही उसकी सूक्ष्मताओं का उद्घाटन किया है । अत: वह प्रधानत: वस्तु संकलनात्मक ही कहा जा सकता है ।

१- तुलनीय है : हिन्दी काव्य में शृंगार परम्परा और महाकवि बिहारी - गणपति चंद्र गुप्त, पृ० ३०५-३०७ ।

२- मतिराम कवि और आचार्य - महेन्द्र कुमार [redacted]र, पृ० ७५-७८ ।

रीतिकालीन शृंगारी कवियों को नायिका के कुछ अंग विशेष जैसे नैन, कुच आदि इतने अधिक प्रिय थे कि कुछ कवियों ने उन पर ही स्वतंत्र ग्रंथ लिखे हैं। गोविन्द गिल्ला भाई ने इस परम्परा के अनुसार नायिका के नैन, मुख तथा कुच पर नैन मंजरी राधा मुख षोडशी तथा पयोधर पच्चीसी नामक रचनाएं की हैं। परन्तु इन रचनाओं में भी नायिका के उक्त अंगों के सूक्ष्म सौन्दर्य के उद्घाटन की अपेक्षा परंपरा प्राप्त उपमानों या अप्रस्तुतों का विभिन्न अलंकारों के मिस पुनर्कथन ही मिलता है। उदाहरणार्थ नैन मंजरी से दो छंद यहां उद्धृत किये जा सकते हैं :

गोविंद कहत केते नारि तेरे नैनन को,
उपमा अनेक विधि बिन ही बिचारे है।
कित हैं कुरंग कित लोचन रसाल रम्य,
कित जल मीन कित नैन थल वारे है।
कित हैं कठोर अति लोह के रचित शर,
कित कमनीय लसैं, नैन सुकुमारे है।
कित कंटकित आप कुलहीन कंजन हैं,
कित बिन कंटक ये लोचन तिहारे हैं।[१]

गोविंद कविंद केते नायका के नैन को,
उपमा उचारे पर योग्य न बिचारे है।
कंज के समान कोऊ कोविद कहत पर,
कटंकित कंज यह कंटक न धारे है।
मीन के समान कोऊ कोविद कहत पर,
मीन जल मांहि यह थल में हिारे है।
हरित समान कोऊ कोविद कहत पर
हरिन अरन्य यह नगर मझारे हैं।[२]

१- गोविन्द ग्रंथमाला पृ० ३२८, नैन मंजरी छं० ५४।
२- वही, वही छं० ५५।

उक्त दोनों छंदों की तुलना से स्पष्ट है कि इनमें पंचम तथा चतुर्थ प्रतीप के भेद के अतिरिक्त और किसी प्रकार का भेद नहीं है। इस प्रकार के पुनर्कथनों से पूर्ण और भी अनेक छंद इनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं।[१] जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के नायिका रूप चित्रण का उक्त विस्तार वास्तव में रूप चित्रण के विस्तार का द्योतक नहीं है, वरन् रूप चित्रण संबंधी उक्तियों के पुनर्कथन का परिणाम है। आशय यह कि कवि की दृष्टि उक्ति वैचित्र्य पर ही है, सौन्दर्य के नव नवोन्मेष पूर्ण चित्रण पर नहीं तथा कवि का उक्ति वैचित्र्य भी परंपरा प्राप्त आलंकारिक शैली से मुक्त नहीं है।

रीतिकाल के अधिकांश कवियों द्वारा रूप चित्रण वस्तुपरक दृष्टि से ही हुआ है।[२] गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा नखशिख वर्णन के रूप में या स्वतंत्र रूप में जोभी रूप चित्रण हुआ है, वह भी मूलत: वस्तुपरक ही है। परन्तु कहीं कहीं इनकी वस्तुपरकता अलंकारप्रियता के कारण इतनी अधिक वस्तु-अनुकथनात्मक हो गयी है कि वर्ण्य वस्तु का स्वरूप स्पष्ट होने के बदले आवरित हो गया है। आशय यह कि कहीं कहीं कवि ने नायिका के अंगों का रूप वर्णन करते समय तत्संबंधी उपमानों की या तो परिगणना भर कर दी है या उन्हें इस प्रकार से एकत्रित कर दिया है कि रूप की रेखाएं स्पष्ट होने के बदले उपमानों की भीड़ में अस्पष्ट ही रह जाती हैं। उदाहरणार्थ नैन वर्णन का निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

कोऊ कहै मीन अरु कोऊ कहै खंजन है,
　　कोऊ कहे काम ही के बान वर भात है।
कोऊ कहे कंज अरु कोऊ कहे कंजदल,
　　कोऊ कहे ऐनन के नैन अवदात है।
ऐसे अनुवाद करि नायका के नैन को,
　　उपमा अनेक पविधि कोविद कहात है।
गोविन्द पै मेरे जान वाम तनु मंदिर के
　　दीपक अनूप उभै सुन्दर सुहात है।[३]

१- गोविन्द गृंथमाला, पृ० १०३, विवेक विलास छं० १८२, १८३ राधा मुख षोडशी, छं०६,७ आदि

२- मतिराम कवि और आचार्य : महेन्द्रकुमार [redacted], पृ० ७४।

३- गोविन्द गृंथमाला ,पृ० १५५, शिखनख चंद्रिका छं० २४।

स्पष्ट है प्रस्तुत छंद में उपमानों के एकत्र समूह के नीचे नैनों का रूप स्पष्ट नहीं हो पाता, जो मतिराम के निम्नलिखित छंद में उपमानों के औचित्यपूर्ण प्रयोग के कारण संभव हो सका है :

आलस बलित कोरे काजर कलित, मतिराम वे ललित बहु पानिप धरत हैं ।
सारस सरस सोहैं सलज सहास सगरब, सविलास ह्वै मृगनि निदरत हैं ।
बरुनी सघन बंक तीछन तरल बढे लोचन कटाच्छ उर पीर ही करत हैं ।
गाढ़े ह्वै गढ़े हैं न निसारे निसरत मैन, बान से बिसारे न बिसारे बिसरत हैं।[१]

गोविन्द गिल्ला भाई तथा मतिराम के उक्त दोनों छंदों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्लाभाई के छंद के द्वारा नैन का रूप, गुण तथा प्रभाव अस्पष्ट ही रहता है। उसको समझने के लिए पाठक को उपमानों की व्याख्या करनी पड़ती है। तभी वह वर्णित नैनों के विषय में कुछ भी हृदयंगम कर सकता है, जबकि मतिराम का छंद स्वयं में इतना स्पष्ट है कि आलस बलित और काजर कलित नैनों का बिम्ब पाठक के मन में सहज ही स्पष्ट हो जाता है। साथ ही वर्णित नैनों के गुण तथा प्रभाव के लिए पाठक को अपनी ओर से कुछ भी जोड़ना नहीं पड़ता ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नायिका के रूप वर्णन में गोविन्द गिल्ला भाई की दृष्टि नायिका के रूप पर न रह कर, रूप वर्णन की आलंकारिक शैली पर अधिक रही है । परिणाम स्वरूप नायिका के विभिन्न अवयवों के सौन्दर्य चित्रण में किसी प्रकार की ताजगी या नवीनता नहीं मिलती । सामान्यत: रीतिबद्ध कवियों द्वारा किये गये रूप चित्रण में सिद्धान्तत: ऐसी नवीनता की अपेक्षा नहीं की जा सकती, जो शास्त्र विहित न हो । रस शास्त्रों में नायिका के रूप चित्रण की जो कुछ दिशाएं संकेतित हैं उनके आधार पर कवि शिक्षा के ग्रंथों में रूप चित्रण के विषय में व्यापक निर्देश तथा नायिका के विभिन्न अवयवों आदि के लिए अप्रस्तुतों की सविस्तार सूचियां दी गयी हैं । रीतिबद्ध कवियों ने वास्तव में रसशास्त्रों के उक्त

१- रसराज -मतिराम, छं० ४०७ ।

संकेतों के आधार पर अपनी प्रतिभा या कल्पना शक्ति के अनुसार नायिका आदि का रूप चित्रण नहीं किया वरन् कवि शिक्षाओं के निर्देशों के आधार पर ही रूप चित्रण किया है। परिणाम स्वरूप इन कवियों के रूप चित्रण में वह ताजगी और नवीनता नहीं मिलती, जो संस्कृत में कालिदास तथा हिन्दी में बिहारी आदि कवियों की कृतियों में दृष्टिगोचर होती हैं। यद्यपि इन कवियों को तथा घनानंद जैसे तथाकथित रीतिमुक्त कवियों को भी शास्त्र विरोधी या शास्त्र निरपेक्ष (आधुनिक स्वच्छंदता वादी कवियों के समान) नहीं कहा जा सकता। गोविन्द गिल्ला भाई ऐसे कवियों में नहीं गिने जा सकते, जिन्हें नित्य नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का वरदान प्राप्त होता है। इसलिए उनमें परंपरा पालन का विशेष आग्रह रहता है तथा कवि शिक्षाओं के सीमित निर्देशों के अन्धानुकरण की विशेष प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, जो हिन्दी के रीतिकार तथा रीति अनुवर्ती कवियों जैसे बिहारी, देव, पद्माकर, भिखारीदास आदि में नहीं मिलती। आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई तथाकथित रीतिबद्ध कवियों के समान शास्त्र की सीमाओं में आबद्ध हैं/परन्तु बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर, भिखारीदास आदि कवियों के समान शास्त्र के संकेतों के आधार पर शास्त्र की सीमाओं को विस्तार प्रदान करने की क्षमता उनमें नहीं थी।

इसीलिए गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा किया गया रूप चित्रण वस्तुत: रूप चित्रण न होकर, रूप चित्रण सम्बन्धी अलंकृत उक्तियों का संग्रह बन गया है। आशय यह कि उनके रूप चित्रण के मूल में रूप चित्रण की इच्छा न होकर, चमत्कारप्रियता तथा उक्ति वैचित्र्य प्रदर्शन की प्रबल कामना ही है। अर्थात् विविध चमत्कार पूर्ण अलंकारों का प्रयोग ही उनके सौन्दर्य चित्रण का एक प्रमुख हेतु बन गया है। इसीलिए यथासंख्य अलंकार के प्रयोग के आग्रह के कारण निम्नलिखित अष्ट विधानी छंद जैसे अनेक छन्द प्राप्त होते हैं जिनमें कवि ने नायिका के सर्वांग सौन्दर्य का वर्णन करना चाहा है[१]।

१- तुलनीय है : गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १६२, छं० १३०, पृ० २२६ छं० ८४,८५, पृ०३६५ छं० ५०, ५१, ५२, ५३, पृ० ३६६ ,छं० ५४, ५५ आदि।

व्याल चंद पिक कोक, हरि रंभा शतपत्र गज ।
श्यामपुर्ण मधु ताल, बन उपबन सर मत्त भज ।
मुक्त शरद सह युगल, बाल घन मानसु मदभर ।
मलय स्वच्छ मुद अहर, क्षुधित मधि रक्त विंध्य बर ।

बाल वदन स्वर कुच कटि उरु चरन गौन निरमल नवल ।
श्री राधा गोविंद कहै ओपत इमि शिखनख सकल ।[1]

इसी प्रकार नायिका के कुच वर्णन के प्रसंग में कवि ने शंकर, राजकुमार, राजा, शूरमा आदि का आरोप कुचों पर रूपक, संदेह, व्यतिरेक, श्लेष आदि अलंकारों के प्रयोग के आग्रह से किया है,[2] तथा नेत्रों के शालिग्राम, शिव, जोगी, दरबार, सवारी, योद्धा गज, आदि के साथ सांग रूपक बांधे हैं।[3] परन्तु इस प्रकार के वर्णनों से न तो सुन्दर वस्तु के सौन्दर्य की प्रतीति होती है और न ही उसका सुन्दर प्रभाव पड़ता है। हां, कवि की विचित्र सूझ बूझ से पाठक कभी कभी चमत्कृत अवश्य हो जाता है। वास्तव में इस प्रकार का चमत्कार प्रदर्शन अलंकार प्रयोग को सफलता भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अप्रस्तुत विधान का औचित्य ही सफल अलंकार प्रयोग का आधार होता है। रीतिकालीन अनेक कवियों ने इस औचित्य की उपेक्षा की है, जिसके परिणाम स्वरूप आजकल अनेक आलोचक अलंकार शास्त्र के औचित्य तथा उसके सिद्धान्तों को ही शंका की दृष्टि से देखने लगे हैं। वस्तुत: अलंकार शास्त्र इस प्रकार के अनुचित अलंकार प्रयोग के लिए कहीं भी स्वीकृति नहीं देता। परन्तु अनेक रीतिकालीन कवियों ने अलंकार प्रयोग के औचित्य की उपेक्षा की है तथा गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इन कवियों की परम्परा का ही अनुवर्तन किया है। चौदह रत्नों के नेत्रों पर आरोप का एक उदाहरण यहां देखा जा सकता है :

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १६३, - शिखनख चंद्रिका, छं० १३१ ।
२- तुलनीय है : वही , पयोधर पच्चीसी, छं० ८, ६, १०, ११ आदि ।
३- तुलनीय है : वही, नैन मंजरी छं० १, २, १४, १७, १८, १६, २० आदि ।

चंद्र शंख इंद्रगज कौस्तुभ सुपेत भाग,
　　　　रत्न रंभा लाल सुरा पुष्प पारिजात हैं ।
कल्पतरु कामदुधा सैन में सुहात शुभ,
　　　　सुरवैद और सुधा दृष्टि में दिखात हैं ।
बरुनी विमल धनु सारंग से सोहत हैं,
　　　　चंचलता सुरवाजि लच्छमी लखात हैं ।
गोविंद कहत ऐसें राधिका के लोचन में,
　　　　चौदहो रतन लोने विमल विभात हैं ।[१]

प्रस्तुत छंद में कवि ने नेत्रों की शुक्लता, भिन्न वर्णता, चंचलता आदि के रूप में उनके गुण तथा सुखदता के रूप में उनके प्रभाव का समवेत वर्णन करने का प्रयास किया है, परन्तु कवि का पांडित्य प्रेरित अप्रस्तुत विधान उसके वर्णन को सहज और स्वाभाविक बनने में बाधक सिद्ध होता है । अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा नायिका के रूप का चित्रण मूलत: वस्तुपरक दृष्टि से ही हुआ है । परन्तु अलंकार प्रियता के कारण अप्रस्तुत विधान के अंबार में नायिका का रूप इतना अधिक दब गया है कि कहीं कहीं रूप चित्रण केवल उक्ति वैचित्र्य बन कर ही रह गया है । इसीलिए वस्तुपरक सौन्दर्य चित्रण में जो सामान्यत: सुस्पष्ट रूप विधान अपेक्षित रहता है वह इनकी रचनाओं में प्राय: नहीं मिलता ।

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा यद्यपि जटिल, कष्ट साध्य क्लिष्ट अलंकारों का रूप चित्रण में खूब प्रयोग मिलता है, परन्तु उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जैसे साम्य मूलक अलंकारों का इनके द्वारा विशेष प्रयोग हुआ है । गोविन्द गिल्ला भाई के अलंकार प्रयोगों का विश्लेषणात्मक तथा सविस्तार अध्ययन आगे उनके काव्य के स्वरूपात्मक अध्ययन के प्रसंग में किया जायेगा , परन्तु यहां इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि साम्य मूलक अलंकारों के प्रयोग में कवि रूप की रेखाओं को अधिक सफलतापूर्वक स्पष्ट कर सका है । नीचे कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं :

१- तुलनीय है , वही, पृ० ३०७, नैन मंजरी छं० ५ ।

मुख गंध के लिए कवि कल्पना करता है कि :

> कैधों विकसित वर हृदय कमल जू की,
> आवत अमित बास पूरन प्रकाश है[1]।

हास्य को कवि ने 'वदन विधु की वर चंद्रिका' तथा 'दंत दामिनी के प्रकाश'[2] के रूप में कल्पित किया है। अन्यत्र जूड़े को तम तारन की गेंद,[3] तथा मांग को अलक अरन्य की विमल वीथिका[4] तथा 'रसराज शृंगार के खेत में हास्य रस सारिणी'[5], कहा है। इसी प्रकार और भी अनेक स्थानों पर नायिका के रूप वर्णन में कवि ने सुरुचिपूर्ण एवं उचित अप्रस्तुत विधान किया है। प्रसिद्ध समस्या 'मयंक कलंक पखारत' पर गोविन्द गिल्ला भाई का छंद, इस दृष्टि से देखा जा सकता है :

> ग्रीव लौं वारि में बूढि कैं राधिका आनन धोवत नीर उछारत।
> गोविंद सोई लखी सखियां सब आपुस में उपमा सुउचारत।
> कोउ कहे बिकसी जल पंकज आप अनूप प्रभा सुपसारत।
> कोऊ कहे नभ तें इत आइ कैं मानों मयंक कलंक पखारत।[6]

प्रस्तुत छंद में प्रसंगोद्भावन कर गोविन्द गिल्ला भाई ने प्रचलित समस्या का सम्यग् प्रयोग किया है। परन्तु यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की प्रसंगोद्भावना गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में अत्यन्त विरल ही है, साथ ही उन्होंने नायिका के रूप, अथवा उसके अंगों एवं उनके प्रसाधित तथा अलंकृत रूप का जो चित्रण किया है, वह मुख्यत: गति शून्य ही है। नायिका के गत्यात्मक सौन्दर्य के वर्णन तथा उसके अंगों की विशेषताओं के वर्णन के छन्दों की संख्या अत्यन्त

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० १६७, शिखनख चंद्रिका छं० ५६।
२- वही, पृ० १६६, वही, छं० ५७।
३- वही, पृ० १५३, वही, छं० १६।
४- वही, पृ० १५०, वही, छं० १२।
५- वही, पृ० २२६, राधारूप मंजरी, छं० ७७।
६- वही, पृ० २१४, वही, छं० ४३।

सीमित हैं, साथ ही उनके विषय वे ही हैं जो परम्परा के अनुसार नखशिख वर्णन की रचनाओं में सामान्यत: प्राप्त हो जाते हैं। उदाहरणार्थ उन्होंने नयन वर्णन के प्रसंग में कटाक्ष, मुख वर्णन के प्रसंग में वचन मधुराई तथा छवि, कान्ति सुकुमारता आदि का वर्णन किया है।[1] कटाक्ष वर्णन का एक छंद यहां देखा जा सकता है :

कोऊ कहे कल्पलता भौंहन ते भूरि भये,
भावना भरन फल सोइ सुखदात हैं।
कोऊ कहे भुव भल चापन तें बान बर,
नेह भरे नीकस के आपे अवदात हैं।
ऐसें अनुवाद करि कीर्तिजा कटाच्छन की,
उपमा अनेक विधि कोविद कहात हैं।
गोविंद पें मेरे जान अमृत की आपगा सी,
लहरी ललाम महा विमल विभात हैं।[2]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत छंद में कटाक्ष के वर्णन की अपेक्षा उनके प्रभाव का ही अधिक वर्णन है। इसी प्रकार छवि कान्ति आदि के वर्णन में उन्होंने स्थूल अप्रस्तुतों की आयोजना कर नायिका के रूप की उज्ज्वलता, उसके अंगों की सामान्य विशेषता आदि का ही वर्णन किया है।[3] आशय यह कि नायिका के सौन्दर्य के अमूर्त पक्ष को कवि ने मूर्त अप्रस्तुतों के द्वारा रूप प्रदान करने का प्रयास किया है, परन्तु उससे सौन्दर्य के अमूर्त पक्षों की अमूर्तता और भी अधिक अस्पष्ट हो गयी है। कवि के द्वारा दिये गये ऐसे छंदों के शीर्षकों को छोड़ कर, छंद पढ़ने से ही केवल, यह नहीं कहा जा सकता कि कवि इन छंदों में नायिका के सौन्दर्य के अमूर्त पक्ष के विषय में कहना चाहता है। वस्तुत: गोविन्द गिल्ला भाई की न तो अभिरुचि ही थी और

१- देखिए : उपरोक्त तालिका सं० २।

२- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २२३, राधा रूप मंजरी, छं० ६६।

३- देखिए : वही, पृ० १६६,छं० ६५, पृ० १६० छं० १२३, पृ० १६५ छं० १३७, पृ० १६४ छं० १३४, पृ० ३४७ से ३५३ आदि।

न हो जहां उन्हें परम्परा के पालन के हेतु नायिका के अमूर्त सौन्दर्य के विषय में लिखना पड़ा है, वहां वे उसके साथ न्याय नहीं कर पाये हैं। गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा किया गया रूप चित्रण, इसीलिए, प्रधानत: शारीरिक रूप चित्रण है, मानसिक सौन्दर्य का चित्रण तो इनकी रचनाओं में मिलता ही नहीं। शारीरिक सौन्दर्य के भी अमूर्त तथा सूक्ष्म पक्ष को वे सफलता पूर्वक स्पष्ट नहीं कर पाये हैं।

नायिका के रूप चित्रण के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि गत्यात्मक सौन्दर्य के चित्रण की ओर गोविन्द गिल्ला भाई की अभिरुचि अधिक नहीं थी। अत: स्वाभाविक है कि उनकी रचनाओं में, सामान्यत: शृंगार काव्य में प्राप्त नायिका की भावपूर्ण भंगिमाओं का सूक्ष्म चित्रण तथा मुद्रांकन, प्रमुख रूप से नहीं मिलता। प्राचीन आचार्यों ने नायिका की जिन भंगिमाओं को हाव नाम दिया है तथा आधुनिक विद्वानों ने जिन्हें स्वाभाविक तथा सचेष्ट आदि भंगिमा कह कर स्पष्ट करने का प्रयास किया है,[१] उनका वर्णन गोविन्द गिल्ला भाई की शृंगार रस का शास्त्रीय विवेचन करने वाली कृति शृंगार सरोजिनी में ही प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ ललित हाव का लक्षण दे कवि ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है :

चंद से वदन भौंह भ्राजत कमान जैसी,
ऐन ते अनूप नैन सुंदर सुहाये हैं।
कुंदन सी काय यह विमल विभाय तापे,
भूषन बसन वेश सुरभि सजाये हैं।
गोविंद कहत ऐसी बनि ठनि आप अंग,
आपको मिलत इत आवत चहाये हैं।
वा समें मृदुल पाय छाले परि आप ताते,
सोइ नहिं आइ पर आप को बुलाये हैं।[२]

१- बिहारी का नया मूल्यांकन - डा० बच्चन सिंह, पृ० ३६।
२- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १९१, पृ० ६४ छं० ७७७।

ललित हाव में, यद्यपि नायिका के सर्वांग सौंदर्य का वर्णन अपेक्षित होता है, परन्तु उसमें नायिका की आंगिक क्रियाओं में सुकुमारता तथा चंचलता आदि का वर्णन भी अनिवार्य माना गया है।[१] स्वयं गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इस हाव का ऐसा ही लक्षण दिया है।[२] परन्तु प्रस्तुत छंद में नायिका के सौन्दर्य वर्णन पर ही कवि की दृष्टि रहती है। परिणाम स्वरूप नायिका का वर्णन ऐसा नहीं हुआ है, जिसे भंगिमा या चेष्टा वर्णन कहा जा सके। वैसे शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह कवि ने करना चाहा है, वही वह कर सका है। इसी प्रकार कवि ने अन्य हावों का वर्णन किया है। किलकिंचित हाव का उदाहरण भी देखा जा सकता है :

सुन्दर विचित्र चित्र देखन कौं मंदिर मैं,
        आइ कैं नवल नारि हिय हरखातिहैं ।
विविध विलास सोइ देखि कैं दिवाल पर,
        गर्व भरि गातन मैं मुख मुसक्याति है ।
गोविंद कहत तहां आइ कैं अचानक ही,
        नाथ नैं उठाइ कैं लगाइ निज छाति है ।
पेखि कैं पियारी सोइ रोषि धरि अकुलाई,
        चौंकति चकति पछिताति मुरझाति है ।[३]

स्पष्ट है प्रस्तुत छंद में भी कवि ने लक्षण के अनुसार ही उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तथा किलकिंचित हाव के वर्णन में आवश्यक हास रोष गर्व आदि का वर्णन[४] कवि ने प्रस्तुत छंद में कर दिया है। परन्तु अंतिम पाद के साथ अन्य पादों की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें कार्य कारण संबंध स्पष्टत: व्यंजित नहीं हो पाता, साथ ही उक्त हाव के वर्णन में विरोधी भावों

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८७४ ।
२- शृंगार सरोजिनी, ह०प्र०सं० १६२ , पृ० ६४ छं० ७७६ ।
३- वही, पृ० ६५, छं० ७८५ ।
४- वही, ह०प्र०सं०१६१, पृ०५,छं०३६ ।

के मिश्रित रूप का चित्रण, जो अनिवार्य माना गया है, समुचित रूप से नहीं हो पाया । आशय यह कि नायिका के हाव आदि के वर्णन में गोविन्द गिल्ला भाई की दृष्टि केवल शास्त्रोक्त लक्षण के येनकेन प्रकारेण निर्वाह पर ही रही है। हाव भाव के वर्णन के लिए अपेक्षित दृष्टि का अभाव ही इससे सिद्ध होता है । पहले कहा जा चुका है कि उनकी अभिरुचि नायिका के सौन्दर्य के सूक्ष्म पक्ष के चित्रण की ओर नहीं थी, और न ही उन्होंने इस दिशा में विशेष प्रयास किया है । इसी लिए नायिका की भावपूर्ण भंगिमाओं अथवा चेष्टाओं का चित्रण उनकी शास्त्रीय रचनाओं के अतिरिक्त अन्य रचनाओं में नहीं मिलता । शास्त्रीय रचनाओं में तो विषय विवेचन की पूर्णता की दृष्टि से उनकी हाव भाव आदि के वर्णनों के लिए कुछ छंद लिखने पड़े हैं, परन्तु वहां उन्हें सामान्यत: सफलता प्राप्त नहीं हुई है ।

रीतिबद्ध कवियों के समान नायिका भेद के प्रसंग में गोविन्द गिल्ला भाई ने नायिका की विभिन्न अवस्थाओं तथा स्वाभाविक चेष्टाओं आदि का वर्णन भी किया है परन्तु उसके विषय में भी प्राय: वही सत्य है जो ऊपर हाव वर्णन के प्रसंग में कहा जा चुका है । आशय यह कि चेष्टा आदि के वर्णन के स्थान पर प्राय: स्थिति या किसी ऐसे प्रसंग का वर्णन ही मिलता है, जिससे किसी चेष्टा आदि की कल्पना की जा सकती है , या नायिका की अवस्था के विषय में अनुमान किया जा सकता है । उदाहरणार्थ मुग्धा ज्ञात यौवना नायिका के वर्णन का निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

सुन्दर सुरंग नैन कान लौं बढ़न लागे,
आइ कें अरुनताइ ओठन में भाति है ।
पाइ लघुताइ लंक निविड नितम्ब भये,
आइ मंदताइ महा पाय में प्रभाति है ।
जोवन की भाइ झलकन लागि अंगन में,
और उकसन लागि मंद मंद छाति है ।
गोविन्द कहत वाको आरसी में बेर बेरें,
बालिका विलोकी निज चित सकुचाति है ।

प्रस्तुत छंद में वर्णित नायिका के अपने अंगों में आगत यौवन के चिह्नों को पुन: पुन: आरसी में देख कर सकुचाना स्वाभाविक ही कहा जायेगा। परन्तु जिस प्रकार कवि ने मुग्धा नायिका के इस मनोविकार को रूप प्रदान करने का प्रयास किया है, वह बड़ा सामान्य है। साथ ही मनोविकार संकोच की तुलना में प्रसंग वर्णन प्रधान हो गया है। इसी प्रकार के वर्णन अन्य नायिकाओं की अवस्था आदि के वर्णन के प्रसंग में मिलते हैं। मध्या नायिका में लज्जा तथा कामेच्छा की तुल्यबलता का जो संश्लिष्ट चित्र बिहारी के इस छोटे से दोहे में मिलता है वह गोविन्द गिल्ला भाई के सवैये में भी संबंध नहीं हो सका है। बिहारी का दोहा है :

> मोहन त्रासति मुंह नटति आंखिन सों लपटाति।
> ऐंचि छुड़ावति करु इंची आगैं आवति जाति।[1]

गोविन्द गिल्ला भाई का सवैया है :

> घूंघट कों तजि प्रीतम को मुख देखन काम सिखावत है।
> लाज सदा उर अंतर में पुनि घूंघट तानि रखावत है।
> काम कहै पति कों बतरावन लाज गरी भरि लावत है।
> गोविं, यों तिय लाज मनोज के बीच में काल बितावत है।[2]

प्रस्तुत दोहे में कवि ने लाज और काम या मनोज शब्दों का प्रयोग कर उक्ति के न केवल काव्य सौन्दर्य को कम कर दिया है वरन् यह स्पष्ट कर दिया है कि वह मध्या नायिका की शास्त्रोक्त परिभाषा के अनुसार ही उसमें काम और लज्जा की तुल्यबल समानता का वर्णन कर रहा है। परन्तु इससे उदाहरण का काव्य सौन्दर्य कितना कम हो गया है, उसकी ओर कवि की दृष्टि गयी ही नहीं है। कवि ने उक्त शब्दों का प्रयोग कर के, न केवल चित्र को अत्यधिक सामान्य तथा स्पष्ट कर दिया है, वरन् विशुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से प्रस्तुत उदाहरण कुछ सदोष भी बना दिया

१- बिहारी सतसई ।
२- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ०७ छं० ५१।

है। क्योंकि प्रीतम के मुख देखन के मूल में सदैव कामेच्छा नहीं मानी जा सकती। उसके मूल में काम शून्य केवल प्रियतम मुख अवलोकन की इच्छा भी रह सकती है। अत: प्रीतम के मुख देखन मात्र के लिए काम की घूंघट छोड़ देने की शिक्षा एक दृष्टि से उचित नहीं कही जा सकती। बिहारी ने इस प्रकार के किसी शब्द का उल्लेख न कर, न केवल काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है, वरन् मध्या की स्थिति का वास्तविक चित्र भी उपस्थित कर दिया है, जो किसी तर्क के आधार पर सदोष सिद्ध नहीं किया जा सकता। आशय यह कि बिहारी की दृष्टि अपने विषय पर रही है, जबकि गोविन्द गिल्ला भाई की उदाहरण में किसी प्रकार लक्षण को चरितार्थ करने पर।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के शृंगार काव्य का अधिक अंश नायिका के सौन्दर्य चित्रण के विषय में है। उन्होंने परम्परा प्राप्त शिखनख तथा नखशिख दोनों प्रणालियों में तो रूप चित्रण किया ही है, साथ ही नायिका के कुछ विशेष अंगों पर स्वतंत्र रूप से ग्रंथ लिखे हैं। नायिका भेद के विवेचन के प्रसंग में उन्होंने नायिका के हाव भाव तथा अवस्था आदि का भी चित्रण किया है, परन्तु उसमें उनकी दृष्टि मुख्यत: शास्त्रीय विवेचन पर अधिक रही है। गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा किया गया नायिका रूप चित्रण प्रधानत: रीतिबद्ध कवियों की शैली में ही हुआ है। परन्तु उनकी रुचि नायिका के सौन्दर्य के सूक्ष्म पक्ष के उद्घाटन में नहीं थी। विशेषकर उन्होंने उसके शारीरिक सौन्दर्य का ही वर्णन किया है, जो मूलत: वस्तुपरक है। नायिका की भंगिमाओं चेष्टाओं आदि का वर्णन जहां उन्होंने किया है, वहां भी प्रसंगोद्भावन या स्थिति वर्णन के प्राधान्य के कारण सामान्यत: वह गौण ही रह गया है। अत: रूप शब्द के मूल अभिधेयार्थ में ही गोविन्द गिल्ला भाई को प्रधानत: रूप चित्रण का कवि कहा जा सकता है।

३।२।२ संयोग शृंगार विवेचन

संयोग शृंगार आलंबन और आश्रय की संयोगावस्था का नाम है, जिसके अंतर्गत कवियों ने नायक नायिका के परस्पर दर्शन से लेकर उनकी संयोगावस्था तक का चित्रण

किया है ।[१] कुछ विद्वानों ने संयोग और संभोग शृंगार को भिन्न माना है, परंतु यह भेद अधिक तर्क संगत प्रतीत नहीं होता ।[२] रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने भी इस प्रकार के भेद किये हैं, परन्तु उनमें भी मतैक्य नहीं है ।[३] परन्तु इतना निश्चित है कि रीतिकालीन कवियों ने वियोग वर्णन की अपेक्षा संयोग वर्णन की ओर अधिक रुचि प्रदर्शित की है[४] तथा प्राय: संयोग शृंगार के अंतर्गत नायक नायिका के परस्पर दर्शन, श्रवण, स्पर्श, हास, परिहास, विहार, मधमान, क्रीडा, सुरति आदि का वर्णन किया है ।[५]

रीति कवियों की प्राचीन परंपरा के अनुसार गोविन्द गिल्ला भाई ने भी संयोग शृंगार के अंतर्गत नायक नायिका के परस्पर दर्शन आदि से लेकर सुरति तक के अनेक चित्र तथा वर्णन अपनी अनेक रचनाओं में प्रस्तुत किए हैं । शृंगार सरोजिनी नामक रचना में तो नायिका भेद के विस्तृत विवेचन के अंतर्गत इन सबका वर्णन प्राप्त होता ही है, साथ ही अन्य रचनाओं में कुछ स्फुट छंद इनके विषय में मिल जाते हैं । उदाहरणार्थ समस्या पूर्ति प्रदीप में दर्शन,[६] मिलन,[७] विपरीत रति,[८] सुरतान्त[९] आदि के अनेक छंद मिलते हैं । इसी प्रकार वक्रोक्ति विनोद नामक रचना में हास परिहास के कुछ सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं । आशय यह कि रीति कवियों की परंपरा के अनुसार गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा भी वियोग वर्णन की अपेक्षा संयोग का अधिक वर्णन हुआ है, और उसमें भी उन्होंने उन्हीं सब बातों का वर्णन किया है जो रीति ग्रंथों द्वारा अनुमोदित है तथा रीति कवियों द्वारा

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७६५ ।

२- वही ।

३- वही, पृ० ७६४,७६५ ।

४- बिहारी का नया मूल्यांकन - डा० बच्चनसिंह, पृ० ३५ ।

५- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १६३ ।

६- समस्या पूर्ति प्रदीप ,ह०प्र०सं०१६२, पृ० ७,८ ।

७- वही, पृ० १५ ।

८- वही, पृ० २२, २३, २६ ।

९- वही, पृ० १६, २८ ।

स्वीकृत है। यहां यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने संयोग शृंगार का वर्णन स्वतंत्र रूप से बहुत ही कम किया है, मुख्यत: इसका वर्णन रीति ग्रंथों में ही आया है, साथ ही नायक नायिका के परस्पर दर्शन, हास परिहास, क्रीड़ा कौतुक आदि का वर्णन सुरति वर्णन की तुलना में बहुत ही कम मिलता है। इसका कारण रीति कवियों की परम्परा का अनुसरण ही प्रतीत होता है। क्योंकि संस्कृत के आचार्यों ने संयोग की सीमा में दर्शन, स्पर्श, संलाप आदि को माना है,[1] जबकि रीतिकालीन आचार्यों ने :

जहां दम्पति प्रीति सों बिलसत रचत बिहार।[2]
चिन्तामनि कवि कहत यों तहं संयोग सिंगार।

के रूप में संयोग शृंगार का स्वरूप अत्यन्त सीमित कर दिया था। संयोग शृंगार के इस सैद्धान्तिक भेद के कारण ही रीतिकालीन कवियों द्वारा संयोग शृंगार का वर्णन भी अत्यन्त सीमित रूप में हुआ है। गोविन्द गिल्ला भाई ने चिन्तामणि की संयोग शृंगार की उक्त परिभाषा में से बिलसत रचत बिहार को भी अस्वीकृत कर केवल बिहरत को ही मान्य रखा है।[3] आशय यह कि संयोग शृंगार के विषय में कवि की अत्यन्त स्थूल एवं सीमित धारणा होने के कारण वह संयोग शृंगार के अधिक स्वस्थ पक्ष जैसे दर्शन, मिलन, हास परिहास आदि की ओर अधिक ध्यान नहीं दे सका। यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत सुरति वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त रूप से किया है।[4] देव, मतिराम, पद्माकर आदि कवियों ने इसमें अधिक रुचि प्रदर्शित नहीं की। जबकि गोविन्द गिल्ला भाई में इसी की प्रधानता है। उन्होंने दर्शन, मिलन, हास परिहास आदि का जहां भी वर्णन किया है, वह मुख्यत: अपने समय में प्रचलित

१- रस तरंगिणी: ६, भानुदत्त, साहित्यदर्पण- विश्वनाथ : ३।२१०।

२- कविकुल कल्पतरु - चिन्तामणि कृत, हिन्दी साहित्य का पृ० ७६४ पर उद्धृत।

३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ०६१ छं० ७६१।

४- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १६६।

समस्याओं पर लिखे गये छंदों में ही मिलता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित समस्याओं पर लिखे छंदों में संयोग शृंगार का स्वस्थ रूप मिलता है :

आज या कदंब तरे रंग बरसत है।[१]

मो पै रंग डारो ना।[२]

अनोखी तुही दधि बेचन हारी।[३]

इसी प्रकार कुछ छंदों में होली, रास, दान लीला आदि का वर्णन भी मिल जाता है।[४] इस प्रकार का एक छंद यहां उद्धृत किया जा सकता है :

आपस में मिलि राधिका गोविंद,
पेखत एक दुजा पर धीरें।
पेखत पेखत नैन मिलै पुनि,
चित्त मिलै, अब होइ अधीरें।
गोविंद यों मिलि एक भये तब,
थीर भये तित दोऊ शरीरें।
नेक हलें/चलें उन ठां मनों,
एक तें ह्वै गई द्वै तसवीरें।[५]

ऊपर के विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपनी संयोग शृंगार की परिभाषा तथा रुचि के अनुसार, संयोग शृंगार के अंतर्गत मुख्यत: संभोग शृंगार का ही वर्णन किया है। तदनुसार इनकी रचनाओं में सुरतारंभ, सुरति, विपरीत रति, सुरतान्त वर्णन के अनेक छंद मिलते हैं। जैसाकि रूप चित्रण के विवेचन के प्रसंग में कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई की रुचि

१- समस्या पूर्ति प्रदीप ह०प्र०सं० १६२, पृ० ६ छं० २२।

२- वही, पृ० १४ छं० ५६।

३- वही, पृ० २३ छं० ६२।

४- वही, पृ० ८ छं० ३२।

५- वही पृ० ८ छं० ३०।

गत्यात्मक सौन्दर्य चित्रण की ओर अधिक नहीं थी। उसी के समान संभोग शृंगार के वर्णन में अपेक्षित संचारी भावों तथा अन्य क्रिया कलापों का वर्णन भी नहीं मिलता । परिणाम स्वरूप इनके संभोग शृंगार के चित्र बड़े जड़ तथा विवरणात्मक हो गये हैं । प्रौढा नायिका, जिसे स्वयं कवि ने 'काम कला परवीन' कहा है[१], की विपरीत रति वर्णन का निम्नलिखित छंद काम कला शून्य विपरीत रति का अधूरा चित्र ही प्रस्तुत करता है :

बिहरैं विनोद भरे राधिका गुविंद दोऊ,
रति विपरीत रचि सुन्दर सलूख सों ।
वा समैं बिखर बार आय बाल आनन पै,
ओपत अपार महा नीलम मयूख सों ।
गोविंद कहत ताको उपमा लसत मानो,
आइ अरविन्द पर शेनि शिलिमुख सों ।
कैधों पूत पंनगो के उर मैं उमंग धरि,
आय मुख चंद्रमा पै पीवन पियूख सों ।[२]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत छंद की प्रथम पंक्ति में ही केवल विपरीत रति का उल्लेख मात्र है, शेष पंक्तियों में कवि बिखरे बालों की अप्रस्तुत योजना में खो गया है । परिणाम स्वरूप न वर्णन में पूर्णता आ पायी है और न ही गति । अन्यत्र भी प्राय: इसी प्रकार के जड़ संभोग वर्णन गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में मिलते हैं । परन्तु यत्र तत्र जहां प्रसंगोद्भावन का प्रयास किया गया है, वहां कुछ सजीवता आ गयी है । इस दृष्टि से विश्रब्ध नवोढा की सुरति वर्णन का एक छंद यहां देखा जा सकता है :

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६२ पृ० ७ छं० ५३ ।
२- वही, पृ० ६ छं० ६४ ।

प्यावन के मिष पानी बाल कों बुलाइ पति,
केलिन की बात कछु कीनी जब सुख तें ।
चौंकी तब चितन में आँख कों उमैठि अति,
गाढी गहि नीविन कों भाजी बडे दुख तें ।
धाइ कें पकरि वाकों गात में गुविंद धरी,
प्रेम तें पलंग पर अंक भरी कुच तें ।
तब तहां आह खाइ उछरि के अंग ऐंठि ,
ओप रे अरी री मैं मरी री कढ़ी मुख तें ।[१]

संयोग शृंगार के उपरोक्त छंद से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई के नायक नायिका के संयोग की जिन स्थितियों का वर्णन किया है उनमें संयोग की मानसिक अनुभूतियों का चित्रण नहीं मिलता, साथ ही संयोग की केवल परंपरा प्राप्त स्थितियों का ही वर्णन मिलता है । परिणाम स्वरूप इनकी कविता में नवीन स्थितियों की कल्पना या प्रसंगोद्भावन प्राय: नहीं मिलता । मध्या के सुरतान्त के निम्नलिखित छंद से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी :

भोर भये उठि आरसी में रति चिह्न सबे तरुनी तनु देखति ।
पीक की लीक कपोल लगो कुच ऊपर के करिका अति पेखति ।
पोंछि कें पीक मिटाइ सबे पर नांहिं मिटे करिका जब लेखति ।
शोचि कें सोइ घरी घरी गोविंद लाजभरी अंखियान तें देखति ।[२]

सारांश यह कि गोविन्द गिल्ला भाई के संयोग शृंगार वर्णन में रीतिबद्ध कवियों का अनुकरण ही प्रधान रूप से मिलता है, जिसके कारण तथा मौलिक उद्भावनाओं के अभाव के कारण उनका संयोग वर्णन अत्यंत संकुचित रूप में ही मिलता है । संयोग शृंगार की मानसिक अनुभूतियों के वर्णन के अभाव तथा संचारी भावों के प्राय: अप्रयोग के कारण उनका संयोग वर्णन सामान्यत: विवरणात्मक हो गया है, जिसके कारण वह अत्यन्त स्थूल एवं गति शून्य लगता है ।

१- शृंगार सरोजिनी, ह०प्र०सं०१९१, पृ० ७, छं० ४७ ।
२- वही, पृ० ७ छं० ५२ ।

३।२।३ वियोग शृंगार विवेचन

आलंबन और आश्रय की देशगत वियुक्त स्थिति का नाम वियोग शृंगार है। आचार्यों ने इस वियुक्तावस्था में रति नामक भाव का प्रकर्ष तथा अभीष्ट की अप्राप्ति मानी है[१] प्राय: सभी आचार्यों ने वियोग के चार भेद माने हैं, पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुण[२]। कुछ आचार्यों ने पांच तथा कुछ ने तीन भी माने हैं[३]। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी विरह के तीन ही भेद माने हैं[४] जो उनकी सामान्य विस्तार वृत्ति के विपरीत है। आशय यह कि सामान्यत: गोविन्द गिल्ला भाई ने अपने शास्त्रीय ग्रंथों में वर्णित विषय के अनेकानेक भेदोपभेद करने की प्रवृत्ति का परिचय दिया है,[५] परन्तु वियोग शृंगार के सामान्यत: मान्य चार भेदों में से प्रथम तीनों को ही स्वीकृत किया है। रीतिबद्ध कवियों ने वैसे ही वियोग शृंगार का वर्णन अपेक्षाकृत कम ही किया है[६]। उस पर यदि किसी कवि ने शास्त्रीय दृष्टि से भी वियोग शृंगार के प्रति संकुचित दृष्टिकोण का परिचय दिया हो, तो उस कवि से सहज ही वियोग वर्णन की अधिक अपेक्षा न ही की जा सकती।

वियोग शृंगार का वर्णन गोविन्द गिल्ला भाई ने मुख्यत: शृंगार सरोजिनी नामक रचना में शृंगार की शास्त्रीय चर्चा करते हुए किया है, जिसमें अनेक छंद ऐसे हैं, जो समस्या पूर्ति प्रदीप नामक रचना में भी पुनरुक्त रूप में मिल जाते हैं[७]। प्रवीण सागर नामक प्रबन्ध काव्य के जिस अंश की पूर्ति गोविन्द गिल्ला भाई ने की थी, उसमें उस काव्य के नायक सागर, तथा नायिका कला प्रवीण की विरहावस्था ही

१- सरस्वती कंठाभरण ५।४५, भोजराज/साहित्य दर्पण ३।१८७, विश्वनाथ, तुलनीय।

२- तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७१६।

३- ,, : वही।

४- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं०१६१, पृ० १००।

५- तुलनीय है : वही, पृ० १५ आदि।

६- बिहारी का नया मूल्यांकन - डा० बच्चन सिंह, पृ० ३५।

७- तुलनीय है : समस्यापूर्ति प्रदीप, पृ० ८ तथा शृंगार सरोजिनी, पृ० १०४।

आती है । परन्तु कवि का मन विरह वर्णन में न लग कर प्रसंगोपात्त अनेक शास्त्रीय विषयों की चर्चा में ही लगा है । प्रवीण सागर की गोविन्द गिल्ला भाई लिखित अंतिम बारह लहरों में से प्रथम पांच लहरों में कला प्रवीण की विरहावस्था आती है, जिनमें कवि ने उसके विरह के वर्णन के स्थान पर सखी द्वारा शिक्षा, प्रेम महिमा तथा दुख, भाग्य आदि की शास्त्रीय शैली में चर्चा की है । इसी प्रकार[1] आगे सागर की विरह दशा का वर्णन करने के बदले कवि ने भक्ति, योग आदि की चर्चा की है ।[2] इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा विरह का अत्यन्त संकुचित अर्थ एवं रूप में चित्रण हुआ है ।

शृंगार रस की शास्त्रीय चर्चा के प्रसंग में, जहां विषय विवेचन की पूर्णता के हेतु, विरह वर्णन कवि ने किया है वहां उसका बड़ा चलता सा वर्णन ही किया है । परिणाम स्वरूप विरह वर्णन सामान्यत: सर्वत्र विरह स्थिति का विवरण हो गया है । उदाहरणार्थ श्रवणानुराग विरह का निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है:

नायिका नवीन एक रूप रस रंग भरी,
मानस में मोह पाइ तेरी सुन नाव री न
रात दिन डोलत है कान्ह कान्ह बोलत है,
खोलत है खास प्रेम पुंज के प्रभाव री ।
गोबिंद कहत वाकी लेत न संभार कैसें,
जेहि तुम नाम पर हो गई निछावरी ।
अंग में उतावरी ह्वै भांवरी भरत फिरै,
रावरी सुरति कान्ह देखे बिन बावरी ।[3]

प्रस्तुत छंद दूती की उक्ति होने के कारण विरह दशा के वर्णन की सत्यता के विषय में शंकास्पद तो पहले ही हो जाता है । क्योंकि दूती की उक्ति का मूल

१- प्रवीण सागर की बारह लहरी, ह०प्र०सं० लहर० ७३ से ७७ तक ।

२- देखिए : वही , लहर ७८ से ८० ।

३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० ६६ छं० ८१३ ।

प्रयोजन नायक के मन में ऐसे भाव उत्पन्न करना भर होता है कि जिनके कारण वह नायिका से मिलने के लिए उतावला हो जाय । अपने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दूती मिथ्या विरह वर्णन भी कर सकती है । इसके अतिरिक्त प्रस्तुत छंद की केवल द्वितीय एवं चतुर्थ पंक्तियों में ही नायिका की विरह दशा का वर्णन है, जहां परंपरानुसार नायिका की वेदना का बड़ा ही सामान्य चित्र प्रस्तुत किया गया है । वस्तुत: ग्रंथ की पूर्णता की दृष्टि से लिखा गया उक्त छंद विरह वर्णन का सुन्दर उदाहरण नहीं बन सकता । स्वप्न तथा चित्र दर्शन नामक पूर्वराग विरह के भेदों के उदाहरणों में भी इसी प्रकार के अपूर्ण विवरणात्मक विरह दशा के चित्र मिलते हैं[१]। प्रत्यक्ष दर्शन नामक पूर्वराग विरह के भेद के उदाहरण में भी नायक के रूप का वर्णन ही प्रधान रूप से मिलता है , उसके रूप आदि के कारण उसको निरन्तर देखते रहने की अभिलाषा उसमें नहीं मिलती । नायक के रूप वर्णन के पश्चात् नायिका के मुख से यह कहला देना कि :

> आभा उन वसी मेरे ऊपर सों न टारे टरै,
> रंग भरी मूरति अनंग भरी अंखियां ।[२]

से पूर्वराग विरह का उदाहरण सिद्ध नहीं हो जाता । उसके लिए कम से कम प्रिय के निरन्तर दर्शन की अभिलाषा का चित्रण तो अवश्य ही होना चाहिए, जो पद्माकर की इन पंक्तियों में देखने को मिलता है[३] :

> घरी घरी पल पल छिन छिन रैन दिन,
> नैनन की आरती उतारिबो ई करिए ।
> इंदु ते अधिक अरविन्द ते अधिक ऐसो,
> आनन गोविंद को निहारिबो ई करिए ।[४]

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ० ६६ छं० ८१५, ८१६ ।

२- वही, पृ० ६६ छं० ८१७ ।

३- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १६६ ।

४- जगद्विनोद- पद्माकर, ६५२ ।

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा स्वीकृत विरह के शेष दो भेदों की स्थिति भी सामान्यत: वैसी है, जैसी पूर्व चर्चित पूर्वानुराग की है। मान के नायिका भेद के एक प्रमुख आधार होने के कारण मान विषयक छंदों की संख्या अन्य विरह भेदों के वर्णनों के छंदों से कुछ अधिक है। क्योंकि मानवती नायिकाओं या धीरादि[1] एवं खंडितादि नायिकाओं के वर्णन प्रसंग में मान विरह के अनेक छंद मिलते हैं।

रीतिकालीन कवियों द्वारा सामान्यत: मान विरह के वर्णनों में नायिका के क्षोभ और ईर्ष्या जन्य आक्रोश का चित्रण हुआ है, जो प्राय: दो रूपमें हुआ है[2]:

(१) नायिका के कथन के रूप में

(२) नायक नायिका के संवाद के रूप में

यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई ने मान के लक्षण में "आपस में बोले नहीं" का उल्लेख किया है[3], परन्तु उदाहरण उक्त दो रूपों में ही मिलते हैं[4]। रीतिकाल के अनेक प्रतिनिधि कवियों जैसे मतिराम, देव, पद्माकर आदि में मान के मूल में आक्रोश और क्षोभ के साथ साथ उदासीनता, विषाद, विवशता आदि मानसिक भाव भी मिलते हैं, जिनकी व्यंजना तीखे व्यंग्यों में होती है[5]। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के वर्णनों में इस प्रकार के अनेक भावों की संकुल अभिव्यक्ति नहीं मिलती।

गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा किया गया प्रवास विरह वर्णन भी सामान्यत: इसी प्रकार का है। परन्तु इसके वर्णन में यत्र तत्र कवि ने उद्दीपन के वर्णन के साथ विरह वर्णन किया है, अत: उसमें अधिक रोचकता तथा स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

१- द्रष्टव्य है, शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१, पृ०३५, ३६, ३७ आदि ।

२- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग -सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २०० ।

३- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० १०० छं० ८९८ ।

४- द्रष्टव्य है : वही , पृ० १०० छं० ८९६ आदि ।

५- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग -सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २०० ।

उमडि घुमडि घन गगन में छाय पुनि,
शीघ्र चहुं ओर लागी चंचला चमक चमक ।
बालक विदेश वाके आये न संदेश पुनि,
बेश बरसत बुंद छिति पै छमक छमक ।
भेक भननात अरु भिल्ली भननात पुनि,
तमकें तमकि रहे जुगुनू भमक भमक ।
गोविंद विलोकी सोई दिल में डरात ताकें ,
मारत मदन मोदि तीर कों तमक तमक[१]।

प्रवाह विरह के अंतर्गत रीतिकालीन कवियों ने संदेश प्रेषण, पत्र लेखन, चित्र लेखन आदि अनेक रूढ़ियों का सुन्दर वर्णन किया है[२]। ~~कुछ~~ परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई के विरह वर्णन में सामान्यत: इनका वर्णन नहीं मिलता । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई का विरह वर्णन मूलत: रीतिकालीन कवियों की परंपरा के अनुसार ही हुआ है, परन्तु रीतिकालीन कवियों के विरह वर्णन को व्याप्ति उनके विरह वर्णन में नहीं मिलता ।

रीतिकालीन कवियों ने विरह वर्णन के अंतर्गत दस काम दशाओं का चित्रण भी किया है[३]। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी तद्नुसार विरह की दस दशाओं , अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप , उन्माद, व्याधि, जडता तथा मरण का वर्णन किया है[४]। परन्तु इन दशाओं को उन्होंने प्रवास विरह के अंतर्गत ही माना है, जबकि कुछ आचार्यों ने उन्हें पूर्व राग के अंतर्गत स्वीकृत किया है[५]।

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१,पृ० १०० छं० ८२५ ।

२- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास,षष्ठम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २०१ ।

३- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ७१६ ।

४- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० १०१ से १०६

५- तुलनीय है : साहित्य दर्पण - विश्वनाथ, ३।१६४ ।

मतिराम तथा पद्माकर ने इन दशाओं को क्रमश: नवदशा और वियोगावस्था कहा है, परन्तु उन्होंने इनके जो उदाहरण दिये हैं वे पूर्व राग की अवस्था में ही अधिक उचित प्रतीत होते हैं[१]। गोविन्द गिल्ला भाई ने यद्यपि इनको प्रवास विरह के अंतर्गत ही स्वीकृत किया है परन्तु उनके कुछ उदाहरण इतने स्पष्ट नहीं हैं कि उन्हें निश्चित रूप से प्रवास विरह के उदाहरण के रूप में स्वीकृत किया जा सके। अभिलाषा का यह उदाहरण इस दृष्टि से विचारणीय है :

जा दिन ते निरखे निज नैनन,
ता दिन ते दुख देह में पाऊं ।
वाहि मिलावन काज अनेकन,
बाटन में बहु व्यौंत बनाऊं ।
गोविंद पै नहि सिद्धि भये इक,
ताहित तोहि कों अर्ज सुनाऊं ।
मोहि मिलाइ दे मोहन सों सखि,
अंक भरी निज छाति सिराऊं ।[२]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत छंद में 'बाटन में बहु व्यौंत बनाऊं' के उल्लेख से यही सिद्ध होता है कि नायक उसी स्थान पर है जहां नायिका है। ऐसी स्थिति में इस छंद को प्रवास विरह के अंतर्गत अभिलाषा का उदाहरण नहीं माना जा सकता। हां, विशुद्ध अभिलाषा का इसे अवश्य उदाहरण कहा जा सकता है। परन्तु अन्य दशाओं के उदाहरणों में अनेक छंद ऐसे हैं जिन्हें निश्चित रूप से प्रवास विरह के अंतर्गत स्वीकृत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ चिन्ता का निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

१- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ०१६८।
२- शृंगार सरोजिनी, ह०प्र०सं० १६१, पृ० १०१ छं० ८३०।

जा दिन ते परदेश गये पति ता दिन ते दुख देह धराऊं ।
अंग अनंग जगी अति जारत सोइ कथा किन पास कहाऊं ।
पाति अनेक लिखी उनकों सखि आय संदेश न औंर हि धाऊं ।
कौन उपाय किये कवि गोविंद वाहि मिली अब व्याधि मिटाऊं[१] ।

आशय यह कि काम की दस दशाओं को यद्यपि गोविन्द गिल्ला भाई ने सिद्धान्तत: प्रवास विरह के अंतर्गत स्वीकृत किया है, परन्तु उनके सभी उदाहरण सिद्धान्त के अनुसार नहीं हैं । जहां तक इन छंदों में विरह वर्णन का प्रश्न है, उक्त उदाहरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि विरह की दशाओं के वर्णन के छंदों में विरह वर्णन इतना स्थूल नहीं है जितना अन्यत्र है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का मन विरह वर्णन में अधिक नहीं रमा है । विरह विषयक उनकी सैद्धान्तिक धारणा तथा उसके भेदों के विवेचन में भी उन्हीं की तद्विषयक रुचि का परिचय मिल जाता है । साथ ही प्रवीण सागर के जिस अंश की पूर्ति उन्होंने की थी, उसमें विरह वर्णन के लिए पर्याप्त अवकाश था, परन्तु उन्होंने वहां भी शास्त्रीय विषयों के विवेचन में अधिक अभिरुचि प्रदर्शित की हैं । अत: उनसे अधिक एवं सुन्दर विरह वर्णन की अपेक्षा नहीं की जा सकती । विरह की दस दशाओं तथा मान आदि के प्रसंग में कुछ अच्छे छंद अवश्य मिल जाते हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत ही अल्प है ।

३।२।४ उद्दीपन विवेचन

रस को उद्दीप्त करने वाली आलंबन की चेष्टादि तथा देश काल की स्थितियां उद्दीपन विभाव मानी गयी हैं[२] । सामान्यत: सखा, सखी, दूती, उनके वचन, षट् ऋतु, पुष्प आदि शृंगार रस के उद्दीपक माने जाते हैं[३] । विद्वानों ने आलंबन के रूप

१- शृंगार सरोजिनी ह०प्र०सं० १६१ पृ० १०२ छं० ८३५ ।

२- साहित्य दर्पण ३।१३१ विश्वनाथ ।

३- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १३७ ।

आदि को अविच्छिन्न तथा ऋतु आदि को तटस्थ उद्दीपन के रूप में भी स्वीकृत किया है[1]। रीतिकालीन कवियों में उद्दीपन के उक्त दोनों प्रकार के उदाहरण प्रभूत मात्रा में मिल जाते हैं,[2] परंतु जैसा कि रूप विवेचन के प्रसंग में कहा जा चुका है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने आलंबन की चेष्टादि के चित्रण में अधिक रुचि प्रदर्शित नहीं की है। आशय यह कि नायिका के रूप चित्रण को तब तक उद्दीपन नहीं माना जा सकता, जब तक कि उसकी चेष्टादि रस की उद्दीपन रूप में चित्रित न हों। गोविन्द गिल्ला भाई ने शृंगार रस के प्राय: सभी अंगों का विवेचन अपनी शृंगार सरोजिनी नामक रचना में किया है, परन्तु उसमें उद्दीपन विभाव के विषय में कवि ने कुछ नहीं लिखा। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उद्दीपन विभाव का महत्व उनकी दृष्टि में उतना नहीं था, जितना आलंबन विभाव का और आलंबन विभाव में भी जितना इनका मन नायिका भेद विवेचन में रमा है उतना नायक भेद विवेचन में नहीं। इसीलिए शृंगार सरोजिनी का अधिकांश भाग नायिका भेद से ही भरा हुआ है।

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति को प्राय: मानवीय भावों की उद्दीपक के रूप में ही चित्रित किया है[3]। परिणाम स्वरूप इस काल में उद्दीपन के रूप में षट् ऋतु वर्णन पर अनेक स्वतंत्र ग्रंथ लिखे गये तथा कुछ कवियों ने बारहमासा भी लिखे[4]। गोविन्द गिल्ला भाई ने भी इसी परम्परा के अनुसार प्रकृति चित्रण किया है जो पावस पयोनिधि तथा षट ऋतु वर्णन नामक ग्रंथों के रूप में मिलता है तथा इसी प्रकार के कुछ छंद समस्या पूर्ति प्रदीप नामक रचना में भी मिलते हैं। परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की उक्त रचनाओं में प्राप्त समस्त प्रकृति चित्रण उद्दीपन रूप में स्वीकृति नहीं किया जा सकता। क्योंकि अनेक छंद ऐसे हैं जिनमें स्वतत्र रूप से प्रकृति चित्रण हुआ है।

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० १३७।

२- वही।

३- द्रष्टव्य है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४६५।

४- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २२६।

इसे नये युग के प्रकृति चित्रण के रूप का पूर्वाभास भी माना जा सकता है । परन्तु वैसे उद्दीपन के रूप में ही इनकी रचनाओं में अधिकांशत: प्रकृति चित्रण मिलता है । षट्ऋतु वर्णन नामक रचना के प्रारम्भ में कवि ने इसे स्पष्ट कर दिया है :

> ओपत उद्दीपन विशेष षट्ऋतु सब सुखकार ।
> ताते ता बरनन करौं मो मति के अनुसार ।[१]

तथा इस रचना में शृंगार रस के उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति चित्रण किया गया है । प्रोषित पतिका का निम्नलिखित छंद विरह में प्रकृति चित्रण के रूप में देखा जा सकता है :

> दरसत दश दिशा दामिनी दमक पुनि,
> बरसत बुंद लखि मोर मन हरखत ।
> हरखत भेक अरु भिंगुर जमात पुनि,
> परसत पौन अरु हरियारि सरसत ।
> सरसत शोर सुनि चातक समाज ही
> करसत मन अरु तन ताको तरसत ।
> तरसत तुम क्यों न गोविंद वा गोरिन पै,
> अरसत अंग अरु दूबरी सी दरसत ।[२]

प्रस्तुत छंद के अवलोकन मात्र से स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने पावस का परम्परा प्राप्त सामान्य चित्र ही उपस्थित किया है जो नायिका की विरह वेदना के उद्दीपक के रूप में चित्रित है । प्रथम दो पंक्तियों में पावस का सामान्य वर्णन है तथा अंतिम दो पंक्तियों में उसे विरह के उद्दीपक के रूप में चित्रित किया गया है । सामान्यत: अन्यत्र भी गोविन्द गिल्ला भाई की उद्दीपन के रूप में प्रकृति

१- षट्ऋतु वर्णन ह०प्र०सं० १५५, पृ० २४४, छं० २ ।

२- वही पृ० २५४ छं० ४१ ।

चित्रण की यही शैली रही है । अर्थात् छंद के अधिकांश में सीधा प्रकृति चित्रण तथा अल्पांश में उसे उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत कर दिया गया है । कहीं कहीं तो यह भेद इतना कम है कि एक ही छंद को थोड़े से परिवर्तन से संयोग और वियोग दोनों के उद्दीपन के रूप में समझा जा सकता है । उदाहरणार्थ शरद् वर्णन का ही एक छंद देखा जा सकता है :

> दादुर मयूर भेक शोर ना सुनात पुनि,
> बादर की बेश घटा ऐपन तें रद की ।
> सारस मराल अरु खंजन मन रंजन की
> छाइ चहुं ओर सेनी महिला मरद की ।
> निकरे मराल सेनि बारिन के वृंद तापे,
> गुंजत भ्रमर भीर आश मकरंद की ।
> वा समें गुविंद लखि मोहि कों मरद बिन,
> दरद करत आइ चांदनी शरद की ।[१]

प्रस्तुत छंद की अंतिम पंक्ति को यदि निम्नलिखित रूप से पढ़ा जाय तो प्रस्तुत छंद में अन्यत्र कहीं भी कुछ भी परिवर्तन किए बिना ही संयोग का अर्थ सम्भव हो सकता है :

> वा समें गुविंद ब्रज राधिका कन्हाई रास,
> रचत हंसत हास चांदनी शरद की ।

आशय यह कि प्रकृति चित्रण इतना अधिक सामान्य है कि वह संयोग वियोग किसी भी दशा के वर्णन के लिए उपयुक्त हो सकता है । वस्तुत: इस प्रकार के प्रकृति चित्रण को उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत भी स्वीकृत नहीं किया जा सकता । क्योंकि जब तक प्रकृति के विभिन्न रूप भाव को उद्दीप्त करते हुए चित्रित न किये

१- षट्ऋतु वर्णन ह०प्र०सं० १५५ पृ० २५४ छं० ४१ ।

जायं, तबतक उन्हें उद्दीपन न मान कर उन्हें भाव के विस्तार या औचित्य की भूमिका के रूप में ही स्वीकृत किया जा सकता है। गोविन्द गिल्ला भाई द्वारा प्रकृति चित्रण प्राय: इसी प्रकार का हुआ है। रीतिकालीन कवियों द्वारा प्रकृति चित्रण उस संश्लिष्ट रूप में नहीं हुआ जिस रूप में वह संस्कृत के कवियों द्वारा हुआ है। साथ ही रीतिबद्ध कवियों द्वारा प्रकृति के केवल उद्दीपन रूप में ही चित्रित किये जाने के कारण उनके प्रकृति चित्रण में वह ताजगी भी नहीं मिलती जो रीतिमुक्त कवियों के प्रकृति चित्रण में देखने को मिलती है।[१] रीतिबद्ध कवियों के ऐसे प्रकृति चित्रण के मूल में उनकी प्रकृति विषयक संकुचित धारणा तथा प्रकृति से अलगाव प्रतीत होता है, जो गोविन्द गिल्ला भाई के प्रकृति चित्रण के विषय में भी सत्य है। इसीलिए इनके प्रकृति चित्रण में अनुभूत सहज प्रकृति चित्रण के स्थान पर परम्परा प्राप्त शास्त्राग्रहानुसारी प्रकृति चित्रण ही मिलता है। संयोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में चित्रित ग्रीष्म ऋतु के वर्णन में निम्नलिखित छंद से यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

तरनि के तापन को त्रास पाइ जीव सबे,
दिन में दुरान लागे निज निज खाने में।
तदपि रहत नांहि व्यंजन के बात बिन,
चित्त में न शान्ति होत नीरन के न्हाने में।
गोविन्द विलोकि ऐसी ग्रीष्म की गरमी कों,
राधिका गुविंद करि शोचि चित्त शाने में।
शीतल सकल रचि साज सुखदाय महा,
जाइकें जुगल पौढे खास खसखाने में।[२]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत छंद में भी कवि की दृष्टि ग्रीष्म के प्रभाव और उपचार तक ही सीमित है उसके स्वरूप एवं विस्तार पर तक उसकी दृष्टि नहीं गयी। साथ

१- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास षष्टम्, भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २०५।
२- षट् ऋतु वर्णन ह०प्र०सं० १५५ पृ० २५१ छं० २७।

ही सारा छंद परम्परा ग्रसित तथा येन केन प्रकारेण संयोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में सिद्ध किया गया है । आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने संयोग तथा वियोग शृंगार के उद्दीपन के रूप में प्रकृति चित्रण किया अवश्य है परन्तु वह केवल परम्परानुसार परम्परा निर्वाह के हेतु ही किया गया है । इसीलिए प्रकृति के अनुभूत तथा सहज उद्दीपक रूपों का उद्घाटन उनकी रचनाओं में नहीं मिलता ।

रीतिकालीन कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र रूप से चित्रण बहुत ही कम किया है,[१] परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई में वह अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में हुआ है । लेकिन गुण की दृष्टि से वह विशेष सुन्दर नहीं कहा जा सकता । एक उदाहरण यहां द्रष्टव्य है :

> विमल भौ व्योम पुनि विधु को प्रकाश बढ़यो ।
> खंजन समाज चहुं ओर में लखात है ।
> नीर नदी नारन के नेक निरमल भये,
> विकसो विशेष कंज शोभा सरसात है ।
> बाट में बटोही सबे ठौर में चलन लागे,
> उदय अगस्त पाई देखो दरसत है ।
> गोविंद कहत तातें जीव में जनात आली,
> आइकें शरद ऋतु चहुंधा सुहात है ।[२]

पावस पयोनिधि नामक रचना में इस प्रकार के और भी अनेक प्रकृति चित्रण के छंद मिल जाते हैं, जिन्हें उद्दीपन के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता । परन्तु अधिकांश ऐसे छंद विविध अलंकारों के प्रयोग को दृष्टि में रख कर लिखे गये हैं अत: उनमें प्रकृति चित्रण गौण हो गया है । उदाहरणार्थ 'पावस पयोनिधि' में आये हुए अधिकांश छंद इसी प्रकार के हैं, जिनमें एक स्थान पर पावस वर्णन के

१- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग - सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २०५ ।
२- षट्ऋतु वर्णन ह०प्र०सं० १५५, पृ० २५५ छं० ४६ ।

लिए जो अप्रस्तुत योजना रूपक के लिए की गयी है, वही अप्रस्तुत योजना दूसरे स्थानों पर संदेह, अपह्नुति तथा श्लेष आदि अलंकारों के लिए कर दी गयी है[1]। परिणाम स्वरूप न केवल पावस वर्णन अत्यन्त सीमित हो गया है, वरन् एक ही बात के अनेक स्थानों पर पुनरुक्त होने के कारण सारी रचना बड़ी विरस लगने लगती है।

४। नीति काव्य

४।१ ऐतिहासिक भूमिका

समाज को स्वस्थ एवं सन्तुलित पथ पर अग्रसर करने एवं व्यक्ति को अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष की उचित रीति से प्राप्ति के लिए जिन विधि निषेध मूलक सामाजिक, व्यावहारिक, आचारिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि नियमों का विधान देश, काल और पात्र के संदर्भ में किया जाता है, उसे नीति शब्द से अभिहित करते हैं[2]। जिस काव्य में रस उपदेश का उपकारक हो उसे नीति काव्य कहा जाता है[3]। यद्यपि इस प्रकार की रचनाओं के काव्यत्व के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है[4]। परन्तु उन्हें काव्य की व्यापक सीमा में स्वीकृत भी किया गया है[5]। हां, इस प्रकार के साहित्य के लेखकों को कुछ विद्वानों ने कवि न कह कर सूक्तिकार कहना अधिक उचित समझा है[6]। संस्कृत में इस प्रकार के साहित्य को सुभाषित अथवा सूक्ति भी कहा जाता है[7]।

भारतीय साहित्य में अत्यन्त प्राचीन काल से इस प्रकार का साहित्य मिलता है। वैदिक साहित्य में समूचा ऋचा साहित्य सूक्त ही कहा जाता है, परन्तु वहां उसका एक अंश ही ऐसा है जिसे वास्तविक रूप से सुभाषित साहित्य के नाम से अभिहित किया जा सकता है तथा जो संस्कृत सूक्ति रत्नाकर नाम से डा० रामजी

१- तुलनीय है : पावस पयोनिधि छं०सं० २,४,५ के साथ छं०सं० ५५,५६,५७ तथा ७८ ७९,८० क्रमश: ।

२- हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४२० ।

३- तुलनीय है : चैम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, जिल्द २, पृ० ५४६ ।

४- हिन्दी नीति काव्य पृ० ६,७(डा० भोलानाथ तिवारी) ।

५- वही, पृ० ८ , ९ ।

६- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ७१ ।

७- सुभाषिताज इन इंस्क्रिप्शन्स-डी०वी०दीशकलकर, ज०ओ०इं०, बड़ौदा, मार्च १९६२, पृ० २३९।

उपाध्याय द्वारा सागर विश्वविद्यालय से प्रकाशित किया जा चुका है ।[१] संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं में भी इस प्रकार का साहित्य प्रभुत मात्रा में मिलता ही है,[२] साथ ही तामिल भाषा के संघम् साहित्य में भी जो ईसवी सन् के प्रारंभ के आस पास लिखा गया था, इस प्रकार का साहित्य मिलता है ।[३] इतना ही नहीं प्राचीन काल के प्राप्त शिलालेखों में इस प्रकार के साहित्य के अनेक सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं ।[४] आशय यह कि अत्यंत प्राचीन काल से भारतवर्ष में नीति काव्य की बड़ी ही समृद्ध परंपरा उन सभी भाषाओं के साहित्यों में मिलती है जिनका साहित्य आज उपलब्ध है ।

हिन्दी साहित्य के आदि काल से हिन्दी में नीतिकाव्य प्रभुत मात्रा में मिलने लगता है, जिसका संबंध विद्वानों ने प्राकृत अपभ्रंश के नीति काव्य के साथ माना है, साथ ही उसके विकास में तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आदि परिस्थितियों के योग को भी स्वीकृत किया है ।[५] परन्तु हिन्दी के विद्वानों ने नीति काव्य की चर्चा करते समय नीति शास्त्र साहित्य तथा नीति काव्य साहित्य के भेद का विवेचन नहीं किया है तथा दोनों को एक ही कोटि में स्वीकृत कर लिया है, जो अधिक तर्क संगत प्रतीत नहीं होता । आगे इस विषय में विस्तार से विचार किया जायेगा, संप्रति हिन्दी के नीति काव्य के विषय में ही विचार किया जा रहा है ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्राकृत अपभ्रंश के नीतिकाव्य की छाया में हिन्दी का आदि कालीन नीतिकाव्य विकसित हुआ, परन्तु भक्तिकाल में आकर ही वह अपना स्वतंत्र रूप पा सका । इसीलिए भक्तिकाल से नीतिकाव्य की परंपरा विशेष रूप से समृद्ध मिलने लगती है तथा इसीलिए खड़ी बोली और डिंगल की अपेक्षा

१- सुभाषिताज इन इन्सक्रिप्शन्स, द्वारा डी०बी०दीशकलकर : जर्नल आफ ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, मार्च, १९६२, पृ०२४० ।

२- हिन्दी साहित्य कोश, पृ०४२० ।

३- तुलनीय है : द तामिल्स एट्टीन हंड्रेड इयर एगो : वी०कनकसबाई, पृ०१३३-१४० ।

४- जर्नल आफ ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, बड़ौदा, पृ०२४२-२४३ ।

५- हिन्दी साहित्य कोश, पृ०४२० ।

ब्रजभाषा का अधिक प्रयोग इस काव्य परंपरा में मिलता है[१]। सामान्यत: हिन्दी नीति काव्य को विद्वानों ने शैली के अनुसार तीन वर्गों में बांटा है - १-उपदेश परक, २- अन्योक्तिपरक, ३- सूक्ति काव्य।[२] परन्तु उसे दो वर्गों तक ही सीमित किया जा सकता है। अन्योक्तिपरक नीतिकाव्य को भी, चमत्कार प्रधान होने के कारण, तथा अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त आदि अलंकारों के समान अन्योक्ति के भी एक अलंकार होने के कारण उसे भी सूक्ति नीतिकाव्य के अंतर्गत स्वीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार समूचे हिन्दी नीतिकाव्य को उपदेशात्मक तथा सूक्ति काव्य के रूप में मान लेने से इन काव्यों के मूल में वर्तमान प्रयोजन तथा उनके काव्य रूपों आदि का भेद भी सहज ही स्पष्ट हो सकता है। आशय यह कि सूक्तिकार का प्रयोजन नीति विषयक किसी कथ्य को चमत्कारपूर्ण ढंग से कहना होता है, जबकि उपदेशक का प्रयोजन अपनी बात स्पष्टत: कह देना भर होता है। अर्थात् सूक्तिकार की दृष्टि प्रधानत: अभिव्यक्ति के रूप पर रहती है, जबकि उपदेशक की दृष्टि अपने कथ्य पर अधिक रहती है। इसीलिए सूक्तियों में चमत्कार, शास्त्रीयता, कथन की शालीनता तथा एक ही विषय पर कभी कभी विरोधी उक्तियां भी मिल जाती हैं, जबकि उपदेशों में स्पष्टता, अनुभूत तथ्य कथन, एवं स्वमत आग्रह विशेष रूप से मिलता है। हिन्दी के भक्त कवियों को इसके अनुसार उपदेशक तथा रीति कवियों को सूक्तिकार के रूप में माना जा सकता है। इन दोनों प्रकार के कवियों के जीवन तथा दर्शन में यह भेद स्पष्टत: देखा जा सकता है। जो उनकी शैली तथा काव्य रूप आदि में प्रतिबिम्बित देखा जा सकता है। अंत में हिन्दी नीतिकाव्य का उक्त दो वर्गों में वर्गीकरण हमारे आलोच्य कवि गोविन्द गिल्ला भाई के नीति काव्य के अध्ययन की दृष्टि से अधिक तर्क संगत है।

हिन्दी नीति काव्य की परंपरा के विकास के अध्ययन के संदर्भ में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शृंगार काव्य की परंपरा के समान ही गुजरात में नीति विषयक साहित्य हिन्दी में प्रभूत मात्रा में लिखा गया है। अनेक भक्त कवियों ने जैसे उपदेशात्मक नीति काव्य लिखा है उसी प्रकार अनेक राज्याश्रित तथा स्वतंत्र कवियों ने भी सूक्ति काव्य लिखा है[३]। इस प्रकार हिन्दी भाषी प्रांतों के समान

१- हिन्दी साहित्य कोश, पृ०४२१।

२- वही

३- देखिए, परिशिष्ट सं०२ अ।

ही गुजरात में उक्त दोनों प्रकार का नीति काव्य लगभग प्रारंभ से ही मिलता है ।

४।२। गोविन्द गिल्ला भाई का नीतिकाव्य

हिन्दी नीतिकाव्य की उक्त दोनों परंपरायें यद्यपि बहुत पहिले से ही गुजरात में मिलती हैं, परंतु गोविन्द गिल्ला भाई का संबंध उपदेशात्मक नीति काव्य के साथ न हो कर सूक्ति नीति काव्य के साथ ही था । प्रारंभ से ही वे सुभाषित साहित्य की ओर अधिक आकृष्ट थे,[१] इसीलिए आगे चल कर वह उनके कवित्व के एक प्रधान अंग के रूप में विकसित होता है, तथा 'विवेक विलास,' 'प्रबोध पच्चीसी,' 'गोविंद ज्ञान बावनी,' 'बोध बत्तीसी,' आदि कुछ स्फुट सुभाषित संग्रहात्मक रचनाएं तथा अन्योक्ति अरविन्द और लच्छन बत्तीसी जैसी शास्त्रीय कृतियां लिखी हैं ।

रीतिकालीन कवियों की नीतिपरक उक्तियों को कुछ विद्वानों ने जीवन के अवसाद और थकान का द्योतक माना है,[२] परन्तु वस्तुत: बात ऐसी नहीं है, उनमें तत्कालीन जीवन की जो चेतना प्रतिबिम्बित मिलती है, उससे यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि रीतिकालीन जीवन अवसाद तथा थकान की छाया से ग्रसित था । आज के जीवन की ऊर्जा अतीत के जीवन की ऊर्जा को मानदंड नहीं मानी जा सकती । रीतिकालीन कवियों के नीति काव्य में तत्कालीन जीवन जैसा भी था प्रतिफलित हुआ है ।[३] इसीलिए भारत में नवागत फारसी साहित्य की जीवन दृष्टि भी इन कवियों को प्रभावित उसी रूप में कर सकी है जिस रूप में संस्कृत आदि साहित्यों की जीवन दृष्टि इन्हें प्रभावित करती आयी थी[४] । आशय यह कि रीतिकवियों के नीतिकाव्य को किसी कल्पित जीवन के अवसाद या थकान के कारण नहीं माना जा सकता । हां, उन कवियों की अपने युग के अनुरूप जो भी जीवन दृष्टि थी, उसका प्रतिफलन ही उनके काव्य में हुआ है । रीतिकालीन कवियों के नीतिकाव्य पर विद्वानों ने संस्कृत के साथ साथ फारसी का भी प्रभाव माना है,[५]

१- तुलनीय है, गोविन्द ग्रंथमाला, उपोद्घात, पृ०२० ।

२- हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० २१३ ।

३- तुलनीय है, हिन्दी नीति काव्य : भोलानाथ तिवारी, पृ०८२ ।

४- वही

५- वही

परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई का नीति काव्य मूलत: संस्कृत के ही नीति काव्य से प्रभावित था, जो निम्नलिखित कुछ तुलनात्मक पंक्तियों से स्पष्ट हो जायेगा-

वृक्षं हीनफलं त्यजन्ति विहगा:, शुष्कसर: सारसा:[१] ।

फलहीन पादप को तजत विहंग पुनि,
सारस तजत सूखे सर यों प्रमानिये[२] ।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्, छत्रेण सूर्यातप:[३]

बाहुल बुभाइबे को बारि है विशाल पुनि,
ताप के निवारबे को छत्र सुखदाये हैं[४] ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई न केवल संस्कृत सुभाषितकार कवियों से अत्यधिक प्रभावित हैं परन्तु उन्होंने अनेक स्थानों पर उनके श्लोकों का केवल छायानुवाद भर ही किया है । उन्होंने एक स्थान पर इसे स्वीकार भी किया है ।[५] तथा उनकी विवेक विलास नामक रचना में अनेक छंद सुभाषित रत्न भांडागार, दृष्टान्तशतक श्रीभोज सुबोध रत्नमाला आदि प्रसिद्ध संस्कृत सुभाषित ग्रंथों के श्लोकों की छाया पर बने मिलते हैं । इसके अतिरिक्त गोविन्द गिल्ला भाई गुजरात के कुछ हिन्दी के जैन कवियों द्वारा भी प्रभावित थे । उन्होंने जिन जैन कवि किशन की किशन बावनी की टीका लिखी थी, तथा प्रकाशित की थी, उसका भी प्रभाव उनकी गोविन्द ज्ञान बावनी नामक रचना के अनेक छंदों पर दृष्टिगोचर होता है । यहां कुछ पंक्तियां उद्धृत की जा रही हैं -

ऐसा सा रहा सा तापै किसन अनंत आसा,
पानी में बतासा तैसा तन का तमासा है ।

किसन बावनी, छं०३० ।

१- संस्कृत नीतिमाला श्लोक, ३७ ।

२- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०८१, छं०१२२ ।

३- भर्तृहरि नीतिशतक, श्लोक ११ ।

४- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०१०७, छं०१६५ ।

५- वही, उपोद्घात, पृ०५ ।

मन में न जानत है पै मास ही को मोट यह,
वारि के बतासा जैसें फूटत अजाने है ।
गोविन्द ज्ञान बावनी, ह०प्र०सं० १६६, छं० १०।

आशय यह कि गोविन्द गिल्ला भाई ने अपनी नीति विषयक कविता के लिए मूलत: संस्कृत सुभाषित संग्रहों तथा अन्य हिन्दी रचनाओं का सहारा लिया है ।

गोविन्द गिल्ला भाई ने जो भी नीति विषयक रचना लिखी है, उनको विषय के आधार पर मुख्यत: दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, एक ऐसी रचनाएं हैं जिनमें कवि का मुख्य विषय भाग्य तथा संसार की असारता रहा है, द्वितीय ऐसी रचनाएं हैं जिनमें कवि ने `विनय विवेक `तथा अन्य सामान्यत: नीति विषयक रचनाओं में मिलने वाले विषयों पर छंद संगृहीत किए हैं । प्रथम प्रकार की रचनाएं संख्या में अधिक हैं तथा उनमें एक ही रचना में एक ही विषय से संबद्ध छंद मिलते हैं, अत: उनमें एक प्रकार की विषयक मूलक एकसूत्रता मिलती है, जबकि द्वितीय प्रकार की रचना संख्या में केवल दो हैं, और वे संग्रहात्मक ही हैं । प्रथम प्रकार की रचनाओं में `गोविन्द ज्ञान बावनी ``प्रेम पच्चीसी `, `प्रबोध पच्चीसी`, `प्रारब्ध पचासा `तथा `बोध बत्तीसी `नामक रचनाएं आती हैं जबकि द्वितीय प्रकार की रचनाओं में `विवेक विलास `और `अन्योक्ति अरविन्द `नामक रचनाएं आती हैं । `नीतिविनोद `नामक उनका ऐसा संग्रह ग्रंथ है जिसमें उनकी सभी प्रकार की रचनाओं के साथ साथ अन्य कवियों के तद्विषयक स्फुट छंद संगृहीत हैं । प्रथम प्रकार की रचनाओं में जैसे विषय मूलक एक सूत्रता समान रूप से मिलती है, उसी प्रकार उनमें वैचारिक विरोध नहीं मिलता । आशय यह कि जैसे सुभाषितों में सामान्यत: एक ही विषय पर परस्पर विरोधी उक्तियां मिल जाती हैं[१] जैसे नारी प्रशंसा के साथ साथ नारी निन्दा के छंद भी मिलते हैं । इस प्रकार की परस्पर विरोधी उक्तियां इन रचनाओं में नहीं मिलतीं । इन रचनाओं में एक प्रकार से

१- जरनल आफ ओरीएन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, पृ० २३८ मार्च १६६२ में लेख सुभाषिताज् इन इन्स्क्रिप्सनस् द्वारा डी० बी० दिशकलकर ।

सैद्धान्तिक आग्रह अवश्य मिलता है जो कवि की तद्विषयक मान्यताओं का परिचायक माना जा सकता । आशय यह कि इन रचनाओं में व्यक्त विचार गोविन्द गिल्ला भाई के मान्य विचार कहे जा सकते हैं, जबकि द्वितीय प्रकार की रचनाओं के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता । उनमें वैचारिक विरोध भी अनेक स्थानों पर मिलता है,[१] साथ ही उनमें वह वैचारिक आग्रह भी नहीं मिलता, जिसके कारण प्रथम प्रकार की रचनाओं को कवि की मान्य विचारधारा को अभिव्यक्त करनेवाली कृति के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है । प्रथम प्रकार की रचनाओं में इसीलिए कहीं कहीं कुछ उपदेशात्मकता भी मिल जाती है । उदाहरणार्थ गोविन्द ज्ञान बावनी का निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

जौं लौं तन राजत है रोग तें रहित सदा,
तौं लौं तप तीर्थ कर पुन्य कों पसारले ।
जौं लौं दुखदाय महा मौत ही बसत दूर,
तौं लौं सतसंग कर ज्ञान कों बढारले
जौं लौं कछु पीडा पुनि आवत न अंगन में,
तौं लौं भजि ब्रह्म परलोक कों सुधारले
गोविंद ग्रहत आइ काल अनचिंत्यो तब,
तुम्ह से न होत कछु सोइ चित्त धारले ।[२]

परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की उक्त दोनों प्रकार की रचनाओं में जो बात समान रूप से मिलती है, वह उनकी चमत्कार प्रियता है । कहीं कहीं तो यह इतनी अधिक हो गयी है कि छंद केवल शब्द क्रीडा मात्र ही प्रतीत होता है । एक एक छंद दोनों प्रकार की रचनाओं का यहां देखा जा सकता है :

सुमन कों राखि सदा सुमन के फेर फेर,
सुमनन नांहि कियो सुमन धरन कों ।

१- तुलनीय है : विवेक विलास, छंद ४९, ५२, ६७, ६९ आदि ।

२- गोविन्द ज्ञान बावनी ह०प्र०सं० १९६, पृ० ५ छं० २३ ।

गोविंद पै सुमनतें सुमनस माँहि शेये,
सुमन सुगंध और सुमन शरन कों ।
उनतें सुमन तेरो होयगो कुमन तातें,
सुमनस चित्त चेति दुख के दरन कों
सुमन के सुमन ले शंकर के शीश पर,
सूम न चढाय कैसें सुमन करन कों ।[१]

पिंगल बिन कविता करे पिंगल गति सो होय ।
पिंगल धरि तिहि छंद पर, पिंगल में धर सोय ।[२]

'प्रबोध पच्चीसी' तथा 'विवेक विलास' के उपरोक्त छंदों से स्पष्ट हो जाता है कि जटिल अलंकार प्रयोग की प्रबल प्रवृत्ति जो गोविन्द गिल्ला भाई के कवित्व की सामान्य विशेषता है, वह उनके नीति काव्य में भी सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होती है । परन्तु यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'विवेक विलास' इनकी एक ऐसी रचना अवश्य है जिसमें यह प्रवृत्ति बहुत अधिक संयमित है । इतना ही नहीं वरन् इस रचना में कुछ छंद तो ऐसे हैं जिन्हें केवल छंदोबद्ध होने के कारण ही भले ही कोई कविता कहे वैसे उन्हें कविता की श्रेणी में स्वीकृत करने का कोई अन्य कारण नहीं खोजा जा सकता । उदाहरणार्थ निम्नलिखित छंद देखा जा सकता है :

पर उपकार लिये नदियाँ बहत वेश,
पर उपकार लिये फलद फरत हैं ।
पर उपकार लिये दूध देत गाय सदा,
पर उपकार लिये टंकन जरत हैं ।
पर उपकार लिये बरसत मेघ महा,
पर उपकार लिये तरनि तिरत हैं ।
गोविंद कहत ऐसें सुजन सकल सदा,
पर उपकार हित कारज करत हैं ।[३]

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ०३१८ प्रबोध पच्चीसी छं० २३ ।
२- वही पृ०१३६, विवेक विलास छं० २९१ ।
३- वही, पृ०८२, वही, छं० १२६ ।

कदाचित् इस प्रकार के छंद कवि की प्रारंभिक अवस्था के होंगे, जैसा कि उन्होंने एक स्थान पर संकेतित किया है । वस्तुस्थिति जो भी हो विवेक विलास में अलंकार प्रयोग का वह आग्रह अवश्य प्रतीत नहीं होता जो अन्य रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई का नीतिकाव्य हिन्दी के रीति कवियों के नीति काव्य के आदर्श पर लिखा गया है । परन्तु उन्होंने मूलत: अपनी नीति विषयक रचनाओं के लिए संस्कृत सुभाषित ग्रंथों का आधार भी गृहीत किया है । इनकी नीति कविता भी शृंगार कविता के समान अलंकृत कविता ही है ।

५। भक्ति काव्य

५।१ ऐतिहासिक भूमिका

ईश्वर विषयक प्रेम का पर्याय भक्ति कहा गया है,[१] शांडिल्य उसे ही 'परानुरक्ति ईश्वरे' कह कर तथा नारद ने 'परमप्रेमस्वरूपता अमृतस्वरूपा च' कह कर उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है ।[२] इस प्रकार के ईश्वर विषयक प्रेम की जिस काव्य में अभिव्यक्ति हो, उसे भक्ति काव्य कहा जाता है, जिसका प्रथम प्रकाशन विद्वानों ने ऋग्वेदीय वरुण सूक्तों तथा कुछ अन्य सूक्तों में माना है ।[३] इस प्रकार भारतीय साहित्य में प्राचीन काल से भक्ति काव्य की परम्परा सिद्ध अवश्य होती है । परन्तु मध्यकाल में जो भक्ति आन्दोलन चला था, उसका संबंध विद्वानों ने दक्षिण के आलवार संतों की भक्ति धारा के साथ माना है, जिनकी परंपरा में ही भक्ति के प्रथम आचार्य रामानुजाचार्य आते हैं।[४] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से धीरे धीरे उत्तर की ओर

१-तुलनीय है : हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ५२४ ।
२- उद्धृत है : वही, पृ० ५२४,५२६ ।
३- वही, पृ० ५२४ ।
४- वही, पृ० ५२५ ।

पहले से ही आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला । रामानुजाचार्य ने शास्त्रीय पद्धति से जिस सगुण भक्ति का निरूपण किया था उसकी ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी[१]। आशय यह कि दक्षिण के भक्तों की भक्ति को जब रामानुजाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा शास्त्रीय विवेचन का आधार मिल गया तो वह शनैः शनैः जनता द्वारा सर्वत्र स्वीकृत होने लगी, साथ ही तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति भी भक्ति के विस्तार में उपकारक सिद्ध हुई । परिणाम स्वरूप उस समय भारत में एक अपूर्व भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिससे किसी भी भारतीय भाषा का साहित्य अछूता न रहा और देश में सगुण निर्गुण के नाम से भक्ति काव्य की दो धाराएं विक्रम की १५वीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर १७वीं शताब्दी के अन्त तक समानान्तर चलती रही[२]। आगे भक्ति काव्य की परम्परा समाप्त तो नहीं होती, परन्तु उसका साहित्यिक महत्व रीति कवियों के सामने बहुत कुछ कम हो गया । जनता में भक्ति का प्रभाव तथा प्रवाह आधुनिक काल तक निरन्तर मिलता है, परन्तु रीतिकालीन हिन्दी साहित्य में तथा बाद में भी भक्ति काव्य का महत्व समाप्त होने लगता है । फिर भी रीतिकाल की परिसीमा में अनेक भक्त, भक्त कवि तथा रीति कवियों द्वारा लिखा गया भक्ति काव्य भी प्रभूत मात्रा में मिलता है ।

रीति कवियों की भक्ति कविता को कुछ विद्वानों ने विलास जर्जर मन में नैतिकता के अभाव का द्योतक माना है[३]। और उनकी भक्ति को शृंगारिकता का एक अंग मानते हुए उसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि "वह एक ओर सामाजिक कवच और दूसरी ओर मानसिक शरण भूमि के रूप में इनको (रीति कवियों की) रक्षा करती थी[४]।" परन्तु वस्तुतः बात ऐसी प्रतीत नहीं होती । क्योंकि रीति कवियों के मन में नैतिकता के वल का अभाव होता तो वे पहले तो शृंगार की वह

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६५ ।

२- वही, पृ० ७२ ।

३- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, षष्टम् भाग, सं० डा० नगेन्द्र, पृ० २१३ ।

४- वही, पृ० २१३ ।

उद्दाम और स्पष्ट विवृति उनके काव्य में न मिलती जो उनकी कविता में सर्वत्र मिलती है। उन्होंने जो लिखा है उसे वे न केवल मानते ही थे परन्तु वह उनके युग की वह वास्तविकता थी, जिससे उनका ही नहीं, वरन् समूचे समाज का जीवन ओत:प्रोत था, और उसे कोई बुरा नहीं मानता था। अगर बात ऐसी न होती तो उनका समाज किस प्रकार उन्हें बरदाश्त कर सकता और इतना ही नहीं वरन् उन्हें महाकवि मान कर उनकी अभ्यर्थना कैसे करता रहा। वस्तुत: वे भक्त नहीं थे, कवि थे, और विशेष कर शृंगारिक कवि। अत: उनसे भक्ति काव्य की अपेक्षा करना ही व्यर्थ है। उन्होंने जो कुछ जब कभी भक्ति विषयक रचनाएं की हैं, वे उनके आस्तिक्य की द्योतक हैं तथा इस बात की प्रमाण हैं कि उस समय भक्ति सर्व साधारण का धर्म था, जो उन्हें भी मान्य था, और वे उससे प्रभावित भी थे। आशय यह कि भक्ति काव्य धारा रीतिकाल में न आ कर समाप्त तो नहीं हुई थी, परन्तु काव्य के क्षेत्र से उसका महत्व अवश्य कम हो गया था। रीति कवियों को अपना युग धर्म मान्य था, अत: उनकी कविता में भी यदा कदा भक्ति विषयक कुछ रचनाएं मिल जाती हैं, परन्तु उन्हें उस अर्थ में भक्ति काव्य नहीं कहा जा सकता जिस अर्थ में सूर तुलसी के काव्य को भक्ति काव्य कहा जाता है।

५।२ गोविन्द गिल्ला भाई का भक्ति काव्य

गोविन्द गिल्ला भाई की भक्ति कविता भी उसी प्रकार की है जिस प्रकार की भक्ति कविता रीति काल के रीति कवियों की भक्ति कविता मिलती है। इनकी भक्ति कविता इनकी 'विष्णु विनय पच्चीसी', 'परब्रह्म पच्चीसी' नामक रचनाओं तथा प्राय: सभी रचनाओं के प्रारम्भ में मंगलाचरण के कुछ छंदों के रूप में मिलती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने भक्ति कल्प द्रुम नामक एक रचना और लिखी है, जिसमें भक्ति की शास्त्रीय पद्धति में विवेचना की गयी है। इनकी समस्त भक्ति विषयक रचनाओं में इनके आस्तिक्य की भावना के अतिरिक्त परम्परा निर्वाह का आग्रह ही प्रधान रूप से मिलता है। अत: इनकी भक्ति कविता को उस अर्थ में भक्ति कविता नहीं कहा जा सकता, जिस अर्थ में भक्त कवियों की कविता को भक्ति काव्य कहा जाता है।

गोविन्द गिल्ला भाई की जीवनी के अध्ययन से भी यही सिद्ध होता है कि उनके जीवन में भक्ति भाव का प्राधान्य नहीं था, साथ ही विष्णु विनय पच्चीसी और परब्रह्म पच्चीसी के विषय में उन्होंने जो लिखा है, उससे भी यही सिद्ध होता है कि उन्होंने परम्परा निर्वाह के हेतु तथा अपने कवित्व के सामान्य मंगलाचरण के रूप में उन रचनाओं को लिखा है[१]। ईश्वर की कल्पना सामान्यत: तीन रूपों में की जाती है, निर्गुण, सगुण और अवतारी । गोविन्द गिल्ला भाई ने प्रथम दो रूपों के विषय में स्वतंत्र रचनाएं क्रमश: परब्रह्म पच्चीसी और विष्णु विनय पच्चीसी लिखी हैं तथा अवतारी ईश्वर राम कृष्ण आदि के विषय में स्फुट छंद अन्य रचनाओं के मंगलाचरणों में मिल जाती है[२]। आशय यह कि ईश्वर विषयक सामान्य धारणा के अनुरूप गोविन्द गिल्ला भाई ने कुछ भक्ति भाव युक्त रचनाएं की हैं । यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गोविन्द गिल्ला भाई को ईश्वर के किसी एक रूप विशेष या किसी देव विशेष से प्रेम नहीं था, उन्होंने हिन्दुओं के मान्य सभी प्रमुख देवी देवताओं की वंदना की है[३]। भक्त कवियों ने सामान्यत: किसी एक देव विशेष या विग्रह विशेष की ओर, बहुदेववाद का विरोध किए बिना ही, अधिक आसक्ति या भक्ति प्रदर्शित की है । परन्तु गोविन्द गिल्ला भाई की रचनाओं में इस प्रकार की एकनिष्ठता दृष्टिगोचर नहीं होती, जो उनमें सामान्य भक्ति भाव या भक्ति के अतिरेक के अभाव का प्रमाण मानी जा सकती है ।

सगुण ईश्वर या देवी देवताओं के विषय में जो गोविन्द गिल्ला भाई के छन्द मिलते हैं उनमें भक्ति भाव गौण तथा विघ्न निवारण की प्रार्थना और विनय भाव का प्रदर्शन प्रधान रूप से मिलता है, साथ ही प्रार्थित देव विशेष की महिमा का वर्णन भी मिलता है । विष्णु विनय पच्चीसी का एक छंद यहां देखा जा सकता है :

१- गोविन्द ग्रंथमाला उपोद्घात, पृ० १३ ।

२- तुलनीय है : वही, पृ० १२, १३ ।

३- तुलनीय है : वही, पृ० १ से ४६ ।

सुन्दर सुहाता महा मंगल प्रदाता पुनि,
तीन लोक त्राता सर्व धरनी के धाता है ।
सर्व गुन ज्ञाता सर्व शक्तिमय भाता पुनि,
दुष्ट कों डरता और भक्तन कों भाता है ।
वाकों जेहि ध्याता सोइ झूठ कों जराता और,
परम प्रख्याता महा मोक्ष पद पाता है ।
गोविन्द कहत ऐसें विष्णु वरदाता मेरी
बुद्धि कों बढाता और विघ्न कों बिलाता है ।[१]

इसी प्रकार के छन्द देवी देवताओं के विषय में भी मिल जाते हैं । परन्तु परब्रह्म पच्चीसी में ब्रह्म के स्वरूप का आख्यान विशेष रूप से मिलता है जो उपनिषदों पर आधारित प्रतीत होता है । एक छन्द यहां देखा जा सकता है :

बानी तें प्रगट नांहि प्रगट है बानी जातें,
मन तें जनात नांहि जातें मन जाने है ।
दृष्टि सों दिखात नांहि देखत है दृष्टि जाते ,
कान तें न सुने जातें सुनत है काने है ।
प्रान तें न श्वास लहे श्वास लहे प्रान जातें,
ऐसें अद्भुत जाको बेदही बखाने है ।
गोविंद कहत ऐसें निरगुन निगम ये,
परम परमात्मा सों मेरे मन माने है ।[२]

यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि गोविन्द गिल्ला भाई की भक्ति विषयक रचनाओं में वह अलंकार प्रेम नहीं मिलता, जो इनके कवित्व में अन्यत्र सामान्य रूप से मिलता है ।

१- गोविन्द ग्रंथमाला, पृ० २३, विष्णु विनय पच्चीसी छं० १ ।
२- वही, पृ० ३४ परब्रह्म पच्चीसी छं० ६ ।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोविन्द गिल्ला भाई ने परम्परा निर्वाह के हेतु तथा अपनी आस्तिक्य भावना से प्रेरित हो जो कुछ भक्ति विषयक रचनाएं लिखी हैं उनमें भक्ति का वह स्वरूप नहीं मिलता जो भक्त कवियों में देखने को मिलता है। इनकी इन भक्ति विषयक रचनाओं में भक्ति भाव के स्थान पर विनय भाव तथा आराध्य या वर्णित देवी देवता की महिमा का वर्णन अधिक मिलता है। साथ ही निरलंकृत शैली में होने के कारण इन रचनाओं में वह चमत्कार भी नहीं मिलता जो अन्यत्र विपुल मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। आशय यह कि इनकी भक्ति कविता नीरस होने के साथ साथ चमत्कृति शून्य भी है।

६। उपसंहार

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्य के इस अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका कवित्व रीतिकालीन रीतिबद्ध कवियों के साँचे में ढला था, तथा उन्हीं की शैली में उन्होंने कविता की है। रीतिकालीन कवियों का प्रमुख विषय शृंगार था सो गोविन्द गिल्ला भाई की कविता का भी सर्वाधिक प्रधान अंग शृंगार कविता ही है, जिसमें उन्हें सर्वाधिक सफलता भी मिली है। रीतिकालीन कवियों के समान उन्होंने नीति, तथा भक्ति काव्य भी लिखे हैं तथा उद्दीपन के रूप में ही प्रकृति चित्रण भी किया है। गोविन्द गिल्ला भाई का सौराष्ट्र के अनेक राजघरानों के साथ निकट का सम्बन्ध था, परन्तु उन्होंने उन किसी राजा महाराजा के विषय में एक भी छन्द नहीं लिखा, परन्तु भावनगर के किसी एक सज्जन की प्रशस्ति में कुछ छन्द लिख कर रीतिकालीन कवियों के समान अपने कवित्व के प्रशस्तिकार रूप का भी परिचय दे दिया है। आशय यह कि भारतेन्दु काल में गोविन्द गिल्ला भाई के जिस कवित्व का सूत्रपात होता है और द्विवेदी युग में जिसका विकास होता है, वह अपने वास्तविक रूप में पूर्णत: रीतिकालीन ही था।

गोविन्द गिल्ला भाई के काव्यादर्श के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका काव्यादर्श बहुत कुछ केशवदास के समान था, परन्तु उन्हें अपने काव्य में वह सिद्धि न मिल सकी, जो केशवदास को प्राप्त थी । फिर भी उनके द्वारा लिखे गये विभिन्न प्रकार के काव्यों में से उनका शृंगार काव्य विशेष सफल कहा जा सकता है परन्तु उसकी एक निश्चित सीमा है जिसके बाहर वह नहीं जाता । आशय यह कि उनका शृंगार काव्य जितना परिमाण में अधिक है उतना व्याप्ति में नहीं । फिर भी उन्होंने जितना भी लिखा है वह अहिन्दी भाषी कवि होने के नाते अपने आप में स्तुत्य है । उसका राष्ट्रीय महत्त्व तो है ही । अस्तु ।